सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49 ; अंक : 3
जून 2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते है।

* * *

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

* * *

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

* * *

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगामरण प्रायो दानं भारः क्रिया बिना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 3

जून
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

इन्द्रदेव स्तुति

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न सहस्त्रमिषों हरिवो गूर्ततमाः। सहस्त्रं रायो मादयध्यै सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

भावार्थ

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 6
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा–डॉ. विजय सिंह 9
4. अष्टाङ्ग योग साधना–प्रो. ऋषिराम राम शर्मा 12
5. गुरुदेव के संस्मरण–जगदीश राए बंसल 18
6. सद्गुरु सत्ता–राज महल की सृष्टि–कृष्ण कुमार पाण्डेय 24
7. भजन–कव्वाली–मोती राम गर्ग 27
8. योग–आसन 28
9. ओह ! मेरे भगवान, आप कहाँ हो ?–राजेन्द्र तिवारी 29
10. सद्गुरुदेव की कृपा–श्याम मनोहर श्रीवास्तव 31
11. ध्यान द्वारा यथार्थ स्थिति का बोध 35

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

योगियों का सिद्ध रस

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग–साधना का उद्देश्य होता है आत्म तत्व को जानकर ब्रह्म–तत्व पा लेना। इसी ब्रह्म–तत्व को शुद्ध परमात्म–तत्व भी कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने इसी परमात्म–तत्व को 'पुरुष विशेष ईश्वरः' कहकर इंगित किया है। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि क्लेश, कर्म, विपाक–आशय से जिसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, वही पुरुष ईश्वर अथवा परमात्म–तत्व कहा जाता है। क्लेश, कर्म, विपाक–आशय से तो जीवात्मा का चिरकालिक सम्बन्ध चला आ रहा है – परमात्म–तत्व का इनसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा न कभी आगे रहना सम्भव है। समाधि पाद के 25वें सूत्र में इस पुरुष विशेष की एक और परिभाषा करते हुए सूत्रकार ने कहा है –

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

अर्थात् उस ईश्वर–पुरुष विशेष में –सर्वज्ञता का बीज यानी ज्ञान निरतिशय है। उससे बढ़कर अथवा उसके समान सर्वज्ञता और किसी में भी नहीं है इसीलिए उसे अद्वितीय और अनुपम भी कहा गया है। श्रुति में भी

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्ता। य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् मन से बारम्बार चिन्तन करके ध्यान में लाया हुआ वह परम पुरुष परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है। जो इसको जानते हैं अमृत स्वरूप हो जाते हैं, यानी वे परमानन्द रूपी रस का पान करके कृतार्थ हो जाते हैं। उन्हें फिर जन्म–मरण के पाशों में आना नहीं पड़ता। लेकिन यह स्थिति आती तब है जब साधक की साधना सतत् और निरन्तर गतिशील रहकर अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती है। योगदर्शन के समाधि पाद के सूत्र 14 – 'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारा–सेवितो दृढभूमिः' की स्थिति को पा लेता है। सूत्र के अनुसार आदर श्रद्धा और प्रेम के साथ बिना किसी व्यवधान और अवरोध के साधक जब साधना की यह दृढभूमि प्राप्तकर लेता है तब ही वह परम–तत्व परमात्मा रूपी आनन्द रस का पान करने का सुअवसर पा सकता है। उपासना–योग, भक्ति योग अथवा ईश्वर प्रणिधान द्वारा भी साधक तब तक अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाता जब तक कि वह साधना की दृढभूमि पर अपने पैर नहीं जमा लेता। साधक साधना की दृढ भूमि पर पहुँच गया है इसका परिचय उसके आचरण और व्यवहार से हर समय मिलता रहता है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीमद्‌भगवद् गीता में आनन्द रूपी अमृत का पान कर सकने वाले भक्ति–योग के साधक के लक्षण बताते हुए कहा है –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदु:खेषु समः सङ्गविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति- मान्मे प्रियो नरः।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्धाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।

अर्थात् जो शत्रु–मित्र में और मान अपमान में, सत्कार और तिरस्कार में समान रहता है एवं शीत उष्ण और सुख–दु:ख में भी समभाव वाला है तथा सर्वत्र आसक्ति से रहित हो चुका है। निन्दा और स्तुति जिसके लिए बराबर हो गई है जो मुनि मननशील संयतवाक् है, अर्थात् वाणी जिसके वश में है, जो सब प्रकार से सन्तुष्ट है, समस्त तृष्णा से जो निवृत्त हुआ है जो स्थान रहित, अर्थात् किसी स्थान से जिसे मोह नहीं है तथा जो स्थिर बुद्धि है और परमार्थ में जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है ऐसा उपासक साधक मुझे प्रिय है। क्योंकि ऐसे भक्त या साधक ही धर्मामृत पान के अधिकारी होते हैं।

जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कुछ इसी प्रकार की बात पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक संख्या 5 में ज्ञाननिष्ठ साधक के सम्बन्ध में कही है। वे कहते हैं –

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदु खसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

यानी जो मान–मोह से मुक्त हैं, जिनका अभिमान और अज्ञान नष्ट हो चुका है जो मान मोह से रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है। जो नित्य अध्यात्मिक विचार में रत रहते हैं, जो कामनाओं से रहित हैं जो द्वन्दों से छूटे हुए हैं, ऐसे साधक उस परम–तत्व के परमानन्द रूप पद को प्राप्त कर पाने के अधिकारी होते हैं।

यही वह तेजोमय परम पद है जहां जाकर साधक को फिर जन्म मरण के बन्धन में नहीं लौटना पड़ता। यही परम–तत्व अव्यय और अक्षर कहलाता है। वेदों में इसी तत्व को आप: ज्योति: रस: और अमृत कहकर इंगित किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं – 'रसो वै स:' अर्थात् वह परम तत्व रस रूप है 'रस' शब्द का अर्थ है आनन्द। य: रसयति आनन्दयति स रस:। जो आनंदित करता है उसे रस कहते हैं। जगत में जो कुछ रस है वह परमात्मा अथवा ब्रह्म का ही रस है इसीलिए उसे रसघन या रसों का महासमुद्र भी कहा गया है। योगीजन समाधि में इसी रस अथवा आनन्द का पान किया करते हैं – यह ब्रह्मानन्द अथवा ब्रह्म रस ही उनका सिद्ध रस अथवा अमृत होता है। इस सिद्ध–रस पान से परितुष्ट होकर ही वे सिद्धयोगी की पदवी पा जाया करते हैं। वसुन्धरा को सी रस से परिपूर्ण होने के कारण रसा कहकर पुकारा गया है, जो वनस्पति आदि के माध्यम से समस्त प्राणि–जगत को सरस बनाती है। संसार में जितनी भी सरसता दिखलाई पड़ती है

वह सबका उद्गम वह रसघन परमब्रह्म परमात्मा ही है। पर, इस तथ्य को कितने जन जान पाते हैं कि यदि जीवन को सरस और सुखद बनाना है तो हमें स्वयं इसी ब्रह्मरस अथवा सिद्धरस से अपने को परितृप्त करना होगा। बिना अपनी तृप्ति अथवा तुष्टि किये तुम औरों को परितृप्त कैसे कर सकोगे। प्रभु का आदेश है कि तुम जीभरकर इस आनन्द रूपी महारस का स्वयं पान करके औरों को भी इसे पान करने के लिए प्रेरित करो। तुम्हारे मानवीय कर्तव्यों की श्रृंखला की यह भी एक कड़ी है कि तुम देवासुर–संग्राम की तरह इस रस–सागर में से सर–कलश को भरकर केवल अपने लिए ही ले जाने की कोशिश मत करो किन्तु लोकहित के लिए इसे सभी दिशाओं में प्रवाहित कर दो। सिद्धयोगियों की ऐसी ही परम्परा होती है। अपने लिए नहीं किन्तु लोक–कल्याण के लिए ही वे नर देह धारण करके पृथ्वीतल पर आते और अपने सहज धर्म के रूप में कर्तव्य पालन करके पुनः अपने निज लोक को लौट जाया करते हैं। हम सबके परम पूज्य योगयोगेश्वर महाप्रभुजी ऐसी ही दिव्यात्माओं से हैं, जिनके सम्बन्ध में योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है –

ने मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिपु लोकेपु किंचन।
नानवाप्तमंवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।

अर्थात् हे पार्थ तीनों लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं है क्योंकि मुझे कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है तो भी मैं कर्मों में वर्तता हूँ।

सिद्धयोगियों का लक्षण भी यही है कि वे पीड़ित और दुःखी जनों की कल्याण कामना के लिए कालक्रमानुसार इस भूतल पर विमुक्त और विदेह होते हुए भी नर देह धारण करके अवतरित होते रहते हैं। हमारे देश में महान अवतारों के अवतरण का उद्देश्य भी तो यही था। महान आत्माओं, सिद्धयोगियों अथवा श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण ही तो लोक के लिए आदर्श बना करता है। महाप्रभुजी का करुणा से ओत–प्रोत लोक जीवन योग मार्ग के सभी साधकों के लिए आदर्श और अनुकरणीय जीवन के रूप में हम सबके सामने है। उनकी शिक्षा और आदर्शों को आत्म–सात करके ही सतत् योग साधना, त्याग एवं वैराग्य की भावना को सबल बनाकर ही तुम इस भूतल के सार उस सिद्ध रस के पान करने के अधिकारी बन सकते हो जिसका अपर नाम आनंद और अमृत है। बिना इस आनन्द के न कोई आनन्दित रह सकता है न औरों को आनंदित करके अपने मानवोचित कर्तव्य का पालन कर सकता है। अतः भगवान कृष्ण के इन शब्दों को सदा याद रखो– **रसोहमप्सु कौन्तेय, प्रमास्मि शशि सूर्ययो।**

परमप्रभु रस रूप है ज्योतियों की ज्योति है, अतः तुम इसी रस और ज्योति से अपने आत्मतत्व को परितृप्त और जाग्रत एवं जगमग करने की सहज चेष्टा करते रहो – तुम्हारी साधना का यही लक्ष्य होना चाहिए।

●सम्पादकीय

सिद्ध योग, सिद्ध योगी एवं शक्तिपात

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

मैंने श्री सिद्ध गुफा संवाई नाम के ग्रुप के अन्तर्गत सिद्ध योग पर कुछ लिखने का प्रयास किया था। पाठकों का आग्रह है कि राष्ट्रभाषा में लिखा जाये ताकि ज्यादा लोग लाभान्वित हो सकें अतः यह हिन्दी में लिखी जा रही है। मैंने पिछले लेखों में बताने का प्रयास किया था कि सिद्ध योगी कौन होता है तथा ये भी बताया था कि सिद्धों की दो श्रेणियाँ हैं तथा व्यवहार में सिद्धयोग व शक्तिपात योग कितना व्यापक हो रहा है – मैंने बताया था कि एक तो अनादि सिद्ध होते हैं जो स्वतः सिद्ध होते हैं, अवतार कहे जाते हैं। उनको अज्ञान का लेश नहीं छू सकता क्योंकि ये स्वतः ज्ञान स्वरूप हैं। ये व्यवहार में कार्य जगत में आने पर भी वस्तुतः त्रिगुणातीत अवस्था में ही रहते हैं। दूसरी श्रेणी के वे सिद्ध होते हैं जिन्होंने अविद्यादि क्लेश व अज्ञान को किसी अवतार की कृपा से, सिद्ध गुरु की कृपा से या अत्यन्त कई जन्मों की साधना से दूर कर मुक्ति भाजन हो चुके हैं। ये साधना सिद्ध कहलाते हैं और कैवल्य पद के भागी होते हैं और ईश्वर तुल्य हो चुके होते हैं। ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध अपने बच्चों पर शक्तिपात या शक्तिसंचार कर सकते हैं। अनादि सिद्ध भी शक्ति पात करते हैं तथा अन्य सिद्धयोगी भी शक्तिपात करते हैं। शक्तिपात करना गुरुदेव की इच्छा पर निर्भर है। शास्त्रों में शक्ति संचार के कई प्रकारों का उल्लेख मिलता है। सिद्ध गुरुदेव हाथ के स्पर्श से, वाणी अथवा आशीर्वाद से, चक्षु से देखकर के, किसी को हृदय से लगा करके अथवा केवल मन में संकल्प करके ही शक्तिपात कर दिया करते हैं। अधिकतर स्पर्श करके प्राणों के संचार द्वारा गुरुदेव शक्ति का संचार या प्रक्षेप किया करते हैं। वैसे हर मनुष्य में शक्तियों का वास रहता है हर समय आत्मशक्ति ऊर्जा के रूप में रोम–रोम से प्रस्फुटित होती रहती है। भोगी व्यक्ति इस शक्ति को इन्द्रिय द्वारों से, अशुभ चिन्तन से, राग – द्वेष से, अनावश्यक संकल्प से इसे नष्ट करता रहता है। जबकि योगी का अपने मन पर पूर्ण संयम होने से वह शक्तियों का भंडार होता है। आत्म दर्शन हो जाने पर निर्विकल्प में प्रतिष्ठित होने पर वह अच्युत की श्रेणी में आ जाता है जब तक इस श्रेणी को प्राप्त नहीं होते, भोग किसी न किसी रूप में बना रहता है और शक्ति क्षीण होती रहती है। 'चिदावसानो भोगः' अर्थात जब तक चित्त का अस्तित्व बना हुआ है तब तक भोग की श्रेणी में ही आता है। सतोगुण की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर योगी के रोम–रोम से प्रकाश की किरणें निकलती हैं। वैसे हर व्यक्ति का अपना आभामण्डल होता है जिसका जितना आत्मविकास है उतना ही आभामण्डल व्यापक होता है। इस आभा मण्डल को ध्यान योगी ध्यान के नेत्रों से देख सकते हैं। हमारे गुरुदेव की योग परम्परा अनादि सदाशिव से चली आ रही है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि श्री प्रभु जी केवल अपने बच्चों पर ही नहीं, अदीक्षितों पर भी कृपा करते हैं। यही बात आज देखने में आ रही है कि नये श्रद्धावान साधकों पर भी प्रभु जी की कृपा पहले की तरह ही बनी हुई है। प्रश्न यह नहीं है कि हम कितने पुराने दीक्षित हैं प्रश्न है हमारे ध्यान योग में तत्परता का, गुरु निष्ठा एवं योग विद्या में निष्ठा कितनी दृढ़ बनी हुई है। गुरुदेव तो साधक के हृदय में ही आत्मदेव के रूप में विराजमान है वे सब जानने वाले हैं। 'गुरुकृपा हि केवलम्' गुरु कृपा ही शक्ति संचार का कारण

बनता है। गुरूदेव की कृपा से 10–12 घण्टे तक साधकों को एक ही आसन में बैठा हुआ हम लोगों ने देखा है। गुरूकृपा एवं शक्तिपात से ही यह संभव है। शक्तिपात भी हल्के, गहरे आदि भेद से कई प्रकार का गुरूदेव बताया करते थे। जैसा आवश्यक समझते हैं, श्रद्धा या क्षमता के अनुसार गुरुदेव शक्ति संचार करते हैं। शक्तिपात के प्रसंग में एक दिन गुरूदेव ने अपने पिता के विषय में बताया था। अपने पिता को गुरूदेव ने श्री प्रभु से योग दीक्षा दिला दी थी। यद्यपि वे कट्टर आर्य समाजी थे। जब पिता जी का अन्तिम समय निकट आया तो प्रभु जी ने गुरुदेव को पिता जी की सेवा के लिए भेज दिया और कहा 'वे जैसा उपदेश दें वैसा ही करना'। पिता जी उन्हें देखकर प्रसन्न हुए और कहा 'बेटा'! तुम्हारे गुरु सर्व समर्थ हैं। उनकी चरण शरण कभी भी नहीं छोड़ना और निरन्तर सेवा में रहना। कुछ दिन बाद पिता जी का देहान्त हो गया। गुरूदेव बताते थे कि प्रभु जी के संकल्प से ही पिता जी ने बहुत अच्छी बात प्रभु जी के लिए कही और कभी साथ न छोडने की बात कही। गुरूदेव का कहना था यह प्रभुजी के शक्तिपात का ही प्रभाव था जो पिता जी के मुख से दिव्य वाणी निकल रही थी अस्तु ! कहने का तात्पर्य है शक्तिपात किसी भी व्यक्ति पर कही पर भी योगीराज कर सकते हैं। हमारे कई गुरुभाइयों ने, सिद्धयोग परिवार, श्री सिद्ध गुफा परिवार, योगेश्वर गुरूदेव या श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम या ध्यान योग गोवर्धन आदि नाम से वाट्सएप बनाया हुआ है। आशा है इन सब के माध्यम से हम योग की यथार्थता को समझते हुए गुरुनिष्ठ रहकर ध्यानयोग परायण बने रहेंगे और अन्य साधकों को भी विशुद्ध योग मार्ग का ज्ञान देते रहेंगे। किसी जिज्ञासु ने कुछ प्रश्न लिखकर मुझे भेजे हैं। यद्यपि मैंने अपने लेख में प्रकारान्तर से इनका उत्तर लिख दिया था। इनके प्रश्न मेरे सामने बाद में आये उनकी सन्तुष्टि के लिए ही प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ।

1. प्रश्न है आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त की जाती है ? – सम्पूर्ण योग एवं ध्यान की साधना आत्मिक शक्ति को अर्जन करने के लिए ही होती है। जहाँ साधना से ज्ञान (सूक्ष्म जगत) का उदय होता है वहाँ शक्ति भी स्वतः प्रकट रहती हैं। यह दोनों युगपद् मिलते हैं इनके लिए अलग–अलग साधन नही करनी पड़ती। मन की एकाग्रता ही समस्त शक्तियों का आधार है। शक्ति के बिना आत्मज्ञान असंभव है। उपनिषद का वचन है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:'** बलहीन व्यक्ति आत्मदर्शन को नहीं पा सकता। बल का अर्थ आत्मबल ही है। इसलिए **'नास्ति योगात् परं बलम्'** योग विद्या से बड़ा बल या शक्ति दूसरी नहीं है।

2. आत्म ज्ञान की अनुभूति अन्तःकरण या चित्त में होती है। ध्यान योग के दृढ़तर अभ्यास हो जाने पर रजोगुण व तमोगुण रूपी मल के नष्ट हो जाने पर सत्य का प्रकाश होता है जिसे योग की भाषा में 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' कहते हैं इसी प्रज्ञा में सत्य का दर्शन होता है।

3. जो योगी पूर्णता को या आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर चुका है उसके रोम–रोम से प्रकाश निकलता है। जब योगी किसी शिष्य पर शक्ति संचार करता है तो शिष्य के सिर पर हाथ का स्पर्श करता है। इससे हाथों से निकलने वाली प्राण शक्ति का प्रवाह शिष्य के अन्दर शक्ति का संचार कर देती है और उस शक्ति संचार से उसके अन्दर भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियाएँ भी शुरू हो जाया करती हैं। नाड़ी–शोधन जिनका हो चुका है वे समाधिस्थ हो जाया करते हैं चित्त प्रवाही नाड़ियों में अवरोध होने पर क्रियायें होती हैं।

4. आत्म शक्ति योगी के मन और बुद्धि में वास करती है। मन और प्राण के समवेत प्रयोग

से ये बाहर संचारित होती है और योगी अपने शिष्यों को कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ाते रहते हैं।

5. आत्मिक शक्ति का ह्रास कई कारणों से होता है काम, क्रोध मोह से, रोग व द्वेष, विषयों के चिन्तन से प्राणों की गति अस्थिर हो जाती है जिससे आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है हमारे गुरूदेव कहाँ करते थे कि दादा गुरूदेव प्रायः कहते थे 'भाडे मिले पर चौंदे मिले' अर्थात् शिष्य तो मिले किन्तु फुटे पात्र की तरह मिले। शक्ति देते रहो किन्तु साधक उनको सम्हाल कर नही रख पाते हैं। इसलिए शक्ति का पूर्ण संचय रखना आवश्यक है।

6. आत्मिक शक्तियाँ अनन्त हैं इनकी गिनती नहीं कर सकते। योग दर्शन के विभूतिपाद में पतंजलि देव ने जिन शक्तियों का वर्णन किया है वे विभति नाम से कही जाती हैं। ये विभूतियाँ योगी की शक्तियाँ हैं जो मन की एकाग्रता जन्य संयम की सिद्धि से प्राप्त होती हैं। इन विभूतियों के प्रकट होने पर योगी सर्वसमर्थ बन जाता है। विभूतियाँ योगी के निर्बीज समाधि में विघ्न रूप भी कही जाती है। किन्तु व्युत्थान समय में ये योगी की आत्म शक्ति के रूप में काम करती हैं। जो सिद्ध गुरु के नियन्त्रण में रहकर योग ध्यान करता है, यम नियमों का पालन करता है वह शक्ति का संचय करता है। गुरू कृपा से ही सब संभव है साधना करने पर अनुभूतियाँ तो होती ही हैं साधना कभी व्यर्थ नही जाती। अनुभूतियाँ सर्वप्रथम मन के संकल्प-शक्ति की सिद्धि, वाक् सिद्धि आदि के रूप में व्यवहार में प्रकट होती है। ये योग के प्रथम चिन्ह के रूप में प्रकट होते हैं। योग के अनुभव हर किसी के सामने प्रकाशित न करने की आज्ञा योग शास्त्र की है **'भवेत् वीर्यवती गुप्ता निर्वीया च प्रकाशिता'** प्रकट करने पर नष्ट भी हो जाती है। **'यस्तु क्रियावान सः पण्डितः'** जो क्रिया वान है वही योग का वेत्ता होता है। योग साधना में अभ्यास का महत्व अधिक है ये केवल चर्चा का विषय नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि साधक को योग से प्राप्त होने वाली शक्तियों का ज्ञान होना चाहिये। साधना का लक्ष्य सिद्धियाँ व शक्ति प्राप्त करना नही है यह तो साधक को व्याज में स्वतः मिल जाती हैं। साधक का लक्ष्य है आत्म साक्षात्कार। सिद्धियों के विषय में लिखते हुये पतञ्जलि देव महाराज एक सूत्र मे लिखते है-

"ता समाधावुपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः"

अर्थात् सिद्धियाँ चित्त वृत्ति निरोध रूप समाधि में तो विघ्न स्वरूप हैं किन्तु व्युत्थान काल में ये सिद्धियाँ हैं योगी की इच्छानुसार कार्य करती रहती हैं। ये योगी के अन्दर स्वतः ही वास करती है सहज ही अंग प्रत्यंग में रहती हैं।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

पांचवे स्कन्ध के छठे अध्याय में भगवान ऋषभ देव ने योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्तःकरण में अभेद रूप से स्थित परमात्मा को अभिन्न रूप से देखते हुये वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर लिङ्ग देह के अभिमान से भी मुक्त होकर योगमाया की अभिमानाभास के आश्रय ही इस पृथ्वी तल पर विचरते रहे। दैव योग से वन में लगे आग की लपटों में घिरा उनका स्थूल शरीर भस्म हो गया –

योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्या
त्यानम सं व्यवहित मनर्थान्तर भावे नान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरूपरराम ।।6।।

सातवें अध्याय में भरत-चरित्र वर्णित है। भगवान ऋषभ के ये बड़े पुत्र थे। कहा गया है कि भगवान् देव के मार्ग पर कोई दूसरा योगी मन से भी कैसे चल सकता है। क्योंकि योगी लोग जिन योग सिद्धियों के लिये लालयित होकर निरन्तर प्रयत्नरत रहते हैं। उन सर्व सिद्धियों को इन्होंने अपने आप प्राप्त होने पर भी असत समझ कर त्याग दिया –

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे –
न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी।
यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता
ह्यसत्तया येन कृत प्रयत्नाः ।।15।। स्कं5, अ.6

महाराज भरत बहुज्ञ थे। बहुत वर्षों तक राज्य करने पर उन्हें अपने राज्य भोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर राज्य को पुत्रों में बाँट कर राज महल त्याग पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) चले आये। वहाँ चक्रनदी (गण्डकी) ऋषियों के आश्रम को पवित्र करती रहती है। राजा भरत एकान्त वन में भगवान की आराधना में लग गये। उनके अन्तःकरण शुद्ध हो गये और परमानन्द की अनुभूति होने लगी। पुष्प, फल, तुलसी दल आदि द्वारा भगवान की पूजा में मगन रहने लगे। उन्हें अब प्रेमानुभूति में अपने प्रियतम प्रभु के अरुण चरणों का ध्यान रूप भक्तियोग का आविर्भाव हुआ जिसके आनन्द में उनकी बुद्धि डूब गयी जिससे बाह्य उपासना स्वयं छूट गया।

आठवें अध्याय में भरत जी का मृग के मोह में फंस कर मृग-योनि में जन्म लेने की कथा कही गयी है। यह कथा आध्यात्म जगत में प्रवेश पाये हुये सिद्धयोग के साधकों के लिये सचेतक है। कथा इस प्रकार है कि पूर्ण मनोयोग से गण्डकी के तीर पर ध्यानस्थ भरत ने व्याघ्र गर्जना सुनी। उनकी एकाग्रता भंग हुआ। उन्होंने देखा कि एक मृगी व्याघ्र गर्जना से भयभीत ऊँचे छलांग लगाती नदी पार जंगल में छिप गयी। परन्तु वह गर्भ वती थी उसका सद्यः जात मृग सावक जल में गिरा छटपटा रहा था। कारुणिक भरत ने उसे बचाया और अपने आश्रम पर उसे पूर्ण सुरक्षा में रक्खा। बड़ा होकर उस मृग सावक के जीव चरित्रों में धीरे-धीरे मन रमता गया। जो राजा सम्पूर्ण राज्य भोग त्याग कर वन में अच्छी योग साधना में रह थे। वे

मृग के व्यामोह में फँसकर तपस्वी भरत जी योगानुष्ठान से च्युत हो गये। मृग छौनो के पालन – पोषण और लाड़–प्यार में ही लगे रहें। आत्म स्वरूप साधना को भूल गये। मृत्यु काल आने पर उसी मृग में आसक्ति होने से उनको मृग योनि में जन्म मिला परन्तु पूर्वजन्म की भयवद् आराधना के कारण उन्हें मृगयोनि प्राप्त होने का कारण याद रहा। मृग योनि में उन्हें सभी आसक्तियों से भयथ लगने लगा था। काल की प्रतीक्षा करते करते प्रारब्ध क्षय होने पर मृग शरीर छोड़ दिया।

मृग शरीर का परित्याग करने पर उन्हें ब्राह्मण शरीर प्राप्त हुआ। पहले जन्मों की व्यथा– कथा की स्मृति रहने के कारण अब वे हर समय भगवान के युगल चरणों का ही ध्यान करते रहते थे। बाह्य वृष्टि में वे पागल, मूर्ख, अन्धे और बहरे के समान व्यवहार करते थे। उनके बड़े भाई कर्मकाण्ड को ही श्रेष्ठ समझते थे। अतः उन्हें भरत जी का प्रभाव ज्ञात नहीं था। वे उन्हे निरा मूर्ख समझते थे। अतः पिता के स्वर्ग सिधारने पर उन लोगों ने इनको पढ़ने– लिखने का आग्रह छोड़ दिया। भरत जी ब्रह्मज्ञान रूप परा विद्या सम्पन्न थे। भरत जी को एक समय डाकुओं के सरदार भद्र काली को बलि देने हेतु पकड़ ले गये।

जब नर–पशु के रुधिर से देवी को तृप्त करने के लिये सरदार ने तलवार उठाया। उसी समय भद्र काली प्रकट हो तलवार छीन कर उन दस्युओं एवं सरदार का बध कर डाला। कहा गया है, कि महापुरुषों के प्रति किया गया अत्याचार रूप अपराध, अपराध करने वालों को ही भोगना पड़ता है।

दसवें अध्याय में जड़भरत और राजा रहुगण सम्वाद वर्णित है।

एक बार राजा रहुगण कहीं पालकी में सवार जा रहे थे। एक कहार अस्वस्थ होने पर उसकी जगह जड़भरत को पालकी उठाने के कार्य में लगा दिया। ढो रहे जड़–भरत के कारण पालकी में बैठे राजा को कष्ट होने लगा। अन्य कहारों ने इसका कारण पालकी छोर है जड़–भरत को बताया। रज–तमयुक्त राजा रहगण बहुत भला–बुरा एवं तिरस्कार युक्त वचन अभिमान के वशी भूत बोले। योगेश्वरों की विचित्र कथनी–करनी का उसे ज्ञान न था। राजा की कच्वी बुद्धि देखकर वे सम्पूर्ण प्राणियों के भिन्न एवं आत्मा ब्राह्मण देवता रूप जड़भरत मुस्कराये और बोले।

एवं बह्मबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत् प्रियनिकेतं पण्डित मानिनं स भगवान ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्व भूत सुहृदात्मा योगेश्वर चर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ।। 8।।

स्क 5, अं 10

जड़भरत ने कहा–राजन ! परमार्थ दृष्टि से कौन स्वामी और कौन सेवक ? व्यवहार शरीर से होता है, दोष उसमें है आत्मा में नहीं। इस प्रकार के यथार्थ तत्व उपदेश देकर भरत मौन हो गये। अब आश्चर्य चकित, क्षुभित, राजा राहुगण ने भरत के चरणों में गिरकर प्रणाम किया और अपने कथन हेतु क्षमा याचना करते हुये कहा– प्रभो ! कृपया बतलाइये, इस प्रकार अपने विज्ञान और शक्ति को छिपाकर मूर्खों की भाँति विचरने वाले आप कौन हैं ? विषयों से आप सर्वथा अनासक्त हैं। मुझे आपकी कोई थाह नहीं मिल रही है। साधो ! आपके योग युक्त वाक्यों की समझ मेरी बुद्धि में नहीं आरही है।

तद् ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढ़–

विज्ञानवीर्यो विचरस्यपार:।
वचांसि योग ग्रथितानि साधो
न न: क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ।।18।। स्कं.5, अं.10

राजा राहुगण ने कहा– दीनबन्धो ! मेरे द्वारा आप जैसे परम साधु की अवज्ञा हुई है। अत: अब आप मुझ पर प्रसन्न हो तथा साधु–अवज्ञा अपराध से मैं मुक्त हो सकूँ।

इग्यारहवें अध्याय में विनीत भाव से राजा राहुगण ने भरत जी की प्रार्थना और उनके द्वारा दिया गया आत्म ज्ञान प्राप्त किया है। सारांश में भरत जी ने कहा– राजन ! जब तक मनुष्य ज्ञानोदय के द्वारा इस माया का तिरस्कार कर, सबकी आसक्ति छोड़कर तथा काम क्रोधादि छ: शुत्रओं को जीतकर आत्मतत्व को नहीं जान लेता तब तक वह इस लोक में व्यर्थ ही भटकता रहता है क्योंकि यह चित्त उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ और वैर आदि के संस्कार तथा ममता की वृद्धि करता रहता है। यह मन ही तुम्हारा बलवान शत्रु है। उपेक्षा करने से इसकी शक्ति बढ़ती है। आत्मस्वरूप को आच्छादित कर रक्खा है। इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु और हरि के चरणों की उपासना द्वारा मन को मार डालो।

"गुरोहरिश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्म मोषम्"

राजा राहुगण ने कहा – प्रभो ! मैं अपने संशयों की निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा। पहले आप ने जो अध्यात्मयोगमय उपदेश दिया है, उसीको और सरल करके समझाइये।

"अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त माख्याहि कौतूहल चेतसो मे"

भरत जी ने राहुगण को अपने पूर्व जन्मों की कथा को बताते हुये बोले – राजन ! भगवान श्री कृष्ण की आराधना के प्रभाव से उस मृग योनि में भी मेरी पूर्वजन्म की स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसलिये अब मैं असंग भाव से गुप्त रूप में विचरता रहता हूँ।

सारांश यह कि विरक्त महापुरुषों के सतसंग से प्राप्त ज्ञान द्वारा मनुष्य को इस लोक में ही अपने मोहबन्धन को काट डालना चाहिये। श्री प्रभु की लीलाओं के कथन और श्रवण से भगवान की स्मृति बनी रहने के कारण साधक सुगमता से संसार सागर पार कर भगवान को प्राप्त कर सकता है–

तस्मान्नरोऽसङ्ग सुसङ्गजात –
ज्ञानासिने हैव विवृक्णमोह:।
हरिं तदीहाकथन श्रुताभ्यां
लब्धस्मृतिर्यात्यति पारमध्वन: ।।16।। स्कं.5, अं.12

❀❀❀

अष्टाङ्ग योग साधना (वहिरंग)

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।

(योगदर्शन 2/32)

पाँच नियम हैं (1) शौच, (2) सन्तोष, (3) तप, (4) स्वाध्याय तथा (5) ईश्वरप्रणिधान। यमों की भाँति नियमों का भी उद्देश्य चित्त का शुद्धिकरण ही है। शौच का अर्थ है शरीर तथा मन की शुद्धि। इस शुद्धि के बिना न तो धर्म के नियमों का पालन हो सकता है और न किसी भी प्रकार की साधना। शास्त्र का कथन है कि –

शरीरमाध्यं खलु धर्मसाधनम्।।

अर्थात् किसी भी धर्म का यथोचित पालन करने के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है, स्वस्थ शरीर के लिए आधि–व्याधियों से मुक्ति चाहिए जिसके लिए शरीर तथा मन को शुद्ध रखना अत्यावश्यक है।

दूसरा नियम सन्तोष है। सन्तोष का अर्थ है कि जो कुछ भी परमात्मा से मिला है या मिलने वाला है उससे मानसिक रूप से सन्तुष्ट यानि प्रसन्न रहना। यह लोक कर्मबन्धन है और कारण तथा कार्य के ताने–बाने से बना है। कर्म अहंभाव का कार्य है, कर्माशय पंचक्लेशों का संयुक्त कार्य है, कर्माशय प्रारब्ध का कारण है और प्रारब्ध कर्मबन्धन है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मबन्धन से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय बताया है कि –

यदृच्छालाभसन्तुष्टः द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्वशं नागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

अर्थात् परमात्मा के सुनियोजित कर्मविधान के अनुसार जो कुछ भी तथा जैसा भी लाभ प्राप्त हुआ हो, सदैव उससे सन्तुष्ट रहना, राग तथा द्वेष के मायिक द्वन्द्वों से चित्त को प्रभावित न होने देना तथा किसी भी कृतकर्म की सफलता अथवा असफलता में समानभाव द्वारा चित्त को शान्त रखने वाले जीव को कर्मबन्धन से मुक्ति मिल जाती है। स्वभावतः इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों में राग–द्वेष रहता है। अतः मायिक बन्धन से मुक्ति के लिए मोक्षार्थी को इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। मानव–जीवन में प्राप्त होने वाली सुख–सुविधाएँ अथवा विपदायें यह सभी प्रारब्ध का फल है अथवा तीव्र पुरुषार्थ का परिणाम होता है। शास्त्र इस तथ्य की पुष्टि करता है कि –

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

ते आह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।।

(योगदर्शन 2/13,14)

''तीव्रसम्वेगानामासन्न:''

अर्थात् कर्माशय के जो कर्म फल देने के लिए परिपक्व हो जाते हैं उन्हें विपाक कहा जाता है। यह विपाक ही जीव की योनि, योनि की आयु तथा उस योनि के जीवनकाल में प्राप्त होने वाले सुख–दु:ख के भोगों का निमित्त कारण है। उस योनि में जो तीव्र संवेग से किया गया पुरुषार्थ भी विपाक में प्रवेश कर जाता है। तप, ध्यान तथा समाधि जैसे यज्ञों से प्रसन्न हुए देवता या महापुरुषों के आशीर्वाद से प्रारब्ध में परिवर्तन होना देखा गया है। जिन साधकों को प्रारब्ध के इस स्वरूप पर दृढ़ विश्वास है वह सन्तुष्ट रहते हैं।

तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँ नियम क्रियायोग है जिसका वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यह क्रियायोग सगुण तथा साकार स्वरूप में उस परमात्मा की आराधना है जो सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान होने के साथ परम कृपालु, आनन्दरूप, परम हितैषी तथा मायाध्यक्ष हैं। इसीलिए इसका यह महान विशेष महत्व है कि –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्य: मोक्षयित्वामि मा शुच:।।
ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्ररूढानि मायया।।

(गीता 18/61/66)

सर्वगुह्यतमं भूय: श्रुणु मे परमं वच:।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(गीता 18/64, 65)

अपि चेदसुदुराचारो भजति मां अनन्यभाक्।
साधुरेव स: मन्तव्य: सम्यग्विवरित्तो हि स:।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वत्शान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(गीता 9/22,30,31)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।
तेषामेव अनुकम्पार्थ अहमज्ञानजं तमः।
नाश्यामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

(गीता 10/10,11)

अर्थात् सगुण उपासना का महत्व वर्णनातीत है। इसका फल उपरोक्त श्लोकों में परमात्मा के मुखारविन्द से प्रकट हुआ है। मैं इस गुप्त रहस्य का वर्णन करने से पूर्व एक और रहस्य बताना चाहता हूँ, जिसका संकेत वेदों में किया गया है।

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवः ब्रतानि।
भूतं भव्यं यच्च वेदाः वदन्ति।
अस्मात् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिन् चान्यो मायया सन्निरुद्धः।।

(श्वेता. उप. 4)

आरम्भ कर्माणि गुणान्वितानि।
भावांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः।
कर्मक्षये याति सः तत्वतः अन्यः।।

(श्वेता. उप. 6/4)

कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मादेवः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।
जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
वाह्यान् आध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यः तथास्मृतिः।।

(माण्डूक्यउप. वै. 12,16)

अर्थात् इस संसार में परमात्मा की भूमिका अति विचित्र है। ऐसे चलचित्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती जिसमें निदेशक स्वयं सभी पात्रों की भूमिका निभाये तथा सम्पूर्ण दृश्य भी स्वयं सृजित करे। परमात्मा ने सृष्टि की रचना करने से पूर्व ही अनन्त प्राणादि मायिक भावों की, अनन्त रूपों तथा पदार्थों की कल्पना कर अनन्त विस्तार वाला माया का सुनियोजित विधान बनाकर, स्वयं उसमें प्रवेश कर जीवात्मा के रूप में स्वयं को ही त्रिगुणबन्धन, पंचक्लेशबन्धन तथा कर्मबन्धन के रूप में बाँधकर सम्मोहित कर लिया और इसे अविद्या की गुणमयी सृष्टि का नामरूप दे दिया तथा ज्ञानचक्षु प्रदान कर विद्यावान स्वरूप में अपने को अवतरित भी किया। वेदशास्त्रों तथा विद्यावान महापुरुषों की वाणी के रूप

में योग तथा भक्ति का ऐसा विधान भी दे दिया जिसके द्वारा जीवात्मायें अपने त्रिबन्धनों को काटकर विद्यावान महापुरुषों की श्रेणी में आ सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के रूप में इस विधान का सरलतम मार्ग भी दर्शा दिया कि मायिक संसार के समस्त धर्मों का परित्याग कर अपने मन तथा बुद्धि को योग तथा भक्ति के माध्यम से यदि परमात्मा को आत्मनिवेदन कर दिया जाये तो सभी बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। कोई जीवात्मा कितनी भी पापयुक्त हो, वह जब अनन्यभाव से लोक तथा धर्म के सभी व्यापारों की चित्तवृत्तियों का निरोध कर अपने अन्त:करण में केवल परमात्मदर्शन की वृत्ति धारण करती है तो तुरन्त उसका अन्त:करण परमात्मा के ज्ञानस्वरूप की ज्योति से दैदीप्यमान हो जाता है और इस ज्ञानचक्षु के उदय होते ही माया की अविद्या का अन्धकार स्वत: नष्ट हो जाता है और सभी मायिक बन्धन कट जाते हैं।

अष्टांगयोग का तीसरा साधन 'आसन' है। स्थूलशरीर को कुछ समय के लिए किसी विशेष आकृति में बांधकर रखना आसन कहलाता है। इस साधन से शरीर रोगमुक्त रहता है जिससे कि अन्य साधन सुगमता से किये जा सकें। योग की दृष्टि से योगदर्शन की परिभाषा है –

स्थिरसुखमासनम्।।

शरीर को स्थिरता का सुख प्रदान करने वाली साधना आसन है। सुखानुभूति सतोगुण का परिणाम है। अत: आसन ऐसा होना चाहिए जिसके साधन से तमोगुण तथा रजोगुण क्षीण हों किन्तु सतोगुण की वृद्धि हो। भगवान श्रीकृष्ण ने निर्देश दिया है कि –

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिर:।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानावलोकयन्।।
तत्रैकाग्रं मन: कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिय:।
उपविश्यासने युंज्यात् योगमात्मविशुद्धये।।

(गीता 6/12,13)

अर्थात् आसन ऐसा होना चाहिए जिसमें शरीर इस प्रकार स्थिर बना रहे कि रीढ़ की हड्डी के साथ सिर, गर्दन तथा धड़ एक ही लम्बवत रेखा में रहें जैसा कि पद्मासन तथा सिद्धासन में रहता है। इस प्रकार के आसन से बहिर्मुखी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं और चिन्तन आज्ञाचक्र में स्थिर होता है। इस आसन में बैठकर शरीर तथा इन्द्रियों की क्रियायें स्थगित हो जाती हैं और मन तथा बुद्धि के द्वारा परमार्थचिन्तन करने से अन्त:करण शुद्ध होता है। बाह्यज्ञान की शून्यता से चित्त में धारणा तथा ध्यान की योग्यता का विकास होता है।

अष्टांग योग का चतुर्थ अंग 'प्राणायाम' है। इस साधन में प्राण को नियंत्रित किया जाता है तथा नाड़ियों का शोधन होता है। नाड़ीशोधन से अविद्या का आवरण क्षीण होता है जैसा कि महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्।।

अर्थात् प्राणायाम से ज्ञान का कामादिरूप आवरण क्षीण होता है। प्राणायाम की परिभाषा है कि

तस्मिन् सति श्वांसप्रश्वांसयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।

अर्थात् आसन सिद्ध हो जाने के बाद जब शरीर स्थिर हो जाय तब नासिकारन्ध्र से लम्बे यानि दीर्घ श्वांस की अन्तर्गति को पूरक तथा बहिर्गति को रेचक कहा जाता है। इन दोनों गतियों का विच्छेद यानि स्तम्भन कुम्भक कहलाता है। इसी कुम्भककाल को बढ़ाते जाना प्राणायाम की साधना है। प्राण का हमारे जीवन से, हमारे चित्त से तथा शरीर से गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि यह सब प्राण की शक्ति से ही शक्तिवान तथा क्रियावान हैं। वेदवाणी का कथन है कि –

''प्राणो वा ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।।''

(छान्दो. उप. 5/1/11)

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम प्राण की ही उत्पत्ति है और इसी से पंचभूतात्मक जगत की उत्पत्ति हुई। अतः प्राण सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वज्येष्ठ है। शास्त्र का कथन है कि –

ऐषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेशः।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां सर्वं जनयति प्राणः चेतोंशून पुरुषः पृथक्।।
तस्मिन् विशुद्धे विभवति एषो आत्मा।।

(मुण्डक उप. 3/1/9)

यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिंगाः व्युस्फुटन्ति।
तथैव आत्मनः सर्वे प्राणाः सरूपाः सहस्त्रशः।।
यच्चित्तः प्राणमायाति प्राणः तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति।।

(प्रश्न. उप. 3/10)

न वायुक्रिये प्रथमोपदेशात्।।

(ब्रह्मसूत्र)

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि से अग्नि का रूप तथा तेज लेकर सहस्त्रों ज्वालायें निकलती हैं उसी प्रकार अक्षरब्रह्म से आत्म तेज लेकर अनन्त प्राणों की उत्पत्ति हुई है। यह आत्मतेज से युक्त प्राण ही अनन्त शरीरों में जीवात्माओं के रूप में उदित हुए हैं जैसे कि आकाश अनन्त घटादि में घटाकाशों के रूप में उदित होता है। यही प्राण परमात्मा की माया द्वारा निर्मित चित्तों में ओतप्रोत हो गया है अतः शरीर का त्याग करते हुए संस्कारों से युक्त जैसा चित्त प्राण में लीन रहता है। उसी के संकल्पों के अनुकूल अन्य लोकों में आत्मतेज से युक्त होकर ही गमन करता है। यह प्राण वायुक्रिया नहीं है, क्योंकि पंचभूतों की उत्पत्ति भी प्राण से है। अतः चित्तवृत्तिविहीन चित्त स्वतः ही प्राण में व्याप्त आत्मतेज से प्रकाशित हो जाता है और साधक को परमात्मदर्शन हो जाता है। विशुद्ध चित्त में ही आत्मसाक्षात्कार होता है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्राणायाम के द्वारा प्राणजयरूप हठयोग सिद्ध होने पर योगी को परमात्मदर्शन हो जाता है किन्तु हठयोग गुरुदेव के संरक्षण में ही सम्भव है अन्यथा प्राण जंगल में

स्वतन्त्र शेर के समान है, उस पर विजय में भयंकर खतरा है। वैसे विशुद्ध चित्त तथा प्राणजय सम्पूरक हैं।

अष्टांगयोग का पाँचवाँ साधन ''प्रत्याहार'' है। इस साधन का भी चित्त शुद्धि तथा योगसिद्धि में विशेष महत्व है। इसकी परिभाषा है कि –

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।

अर्थात् अपने–अपने विषयों के सम्बन्ध से मुक्त होकर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में ही तदाकार हो जाना ''प्रत्याहार'' है। जब हमारी इन्द्रियों का अपने विषय से सम्पर्क होता है, तब उनमें विषयाकार वृत्ति उत्पन्न होती है, जब मन इस वृत्ति को ग्रहण करता है तब मन वृत्याकार होकर संकल्प करता है और तुरन्त यह संकल्प बुद्धि में प्रवेश कर जाता है, बुद्धि चित्तवृत्ति के रूप में चित्त में प्रकाशित हो जाती है और आत्मा बुद्धि के साथ तदाकार होने के कारण इस बुद्धिसंवेदना को अपने अन्दर अनुभव करती है और भोक्ता की भ्रान्ति में मोहित क्षेत्रज्ञ की उपाधि हो जाती है। यही नामरूप की उपाधि विश्वरूप धारण कर लेती है। इन्द्रियजनित वृत्तियाँ ही संसारचक्र चलाती हैं। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्यधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात्वमिन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

अर्थात् माया की सृष्टि में इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों में राग अथवा द्वेष निहित रहता है, क्योंकि उस विषय के स्वाद में यदि मन को सुख की अनुभूति है या अनुकूलता है तब राग होगा और यदि दुःखानुभूति अथवा प्रतिकूलता है तब द्वेष होगा। इस प्रकार जब मन इन्द्रियों का अनुगमन करता है तब वह अपने साथ बुद्धि का भी हरण कर लेता है। इसलिए योगजिज्ञासु को इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना परमावश्यक है। यह रागद्वेष ही कामविकार है जिसने आत्मज्ञान पर आवरण डाला हुआ है और मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के माध्यम से जीवात्मा को अज्ञान के अन्धकार में मायामोह में बाँधकर रखता है, उसे अपने नित्यानन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा सर्वत्र व्याप्त तथा सर्वाधार चैतन्यात्मा का बोध ही नहीं होने देता। अतः योग के साधक को प्रत्याहार का पालन करते हुए इन्द्रियों का नियमन कर मन पर संयम करना चाहिए जिससे कि ज्ञान तथा विज्ञान के नाशक कामविकार से मुक्ति मिल सके।

गुरुदेव के संस्मरण

जगदीश राए बंसल

मैं जगदीश राए बंसल अपनी अर्धांगिनी श्रीमती कमला देवी, सुपुत्र विजय, पुत्र वधु श्रीमती रजनी, प्रिय पौत्र संयम एवं पौत्री टोशा के साथ अपने पैतृक स्थान गोहाना (हरियाणा) से आकर वर्तमान में नई दिल्ली स्थित विकासपुरी में रहता हूँ। मैंने गोहाना में रहते सन् 1987 में सपत्नीक अपने ऋषिकेश आश्रम में श्री गंगा दशहरा के पावन पर्व पर परम गुरु योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। दीक्षा से पहले मैं गुरु शक्ति, अध्यात्मिक योग एवं दीक्षा आदि की परिभाषा अथवा महत्व से एक दम अनभिज्ञ था। इसे मैं अपने भाग्य की विडम्बना ही कहूंगा कि एक बार अपने ही आराध्यदेव जी का कोलकाता में योग प्रचार कार्यक्रम था। मेरे एक मित्र श्री बाल किशन गोयल ने मुझसे कहा कि 'हरियाणा भवन' में एक बहुत अच्छे महात्मा जी पधारे हुए हैं, अवश्य आना। मैंने तपाक से फिफ्ती कसते हुए कहा कि गत माह भी तो एक पहुँचे हुए महात्मा पधारे थे...। यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि गत माह एक उच्च कोटि के लगने वाले महात्मा जी आए थे जो तीन-चार दिनों पश्चात् ही एक करतूत का भांडा फूट जाने के कारण तुरन्त भाग जाने पर विवश हुए थे।

वैसे मेरी साधू-सन्तों, मन्दिरों, तीर्थों एवं सेवा समितियों के प्रति प्रारम्भ से ही सुहावनी निष्ठा रही है। मगर उस दिन....?

जीवन का मोड़ – संयोग कुछ इस प्रकार से बना कि मेरे पूज्य पिताजी ने सन् 1966 में कस्टोडियन विभाग द्वारा नीलाम किए गए प्लॉटों में से एक प्लॉट मेरे नाम से खरीदा था। इस प्लॉट निर्माण के प्रथम चरण में ही एक सिर फिरे अर्जीनिविस ने हम पर मुकदमा ठोक दिया कि यह भू-भाग मेरा है। मेरे पिता जी ने सरकारी खरीद होने के गर्व से कोई खास पैरवी नहीं की। परिणामत: कानून की बारीकी से, दावेदार की पैनी नजर से, सिफारिश से और लेन देन के चक्कर से कभी जीत कभी हार के मध्य केस पर केस बढ़ते चले गए। यह सबके चलते मेरे पिताश्री पंचतत्व में विलीन हो गए। मुझे कचहरी का कोई ज्ञान न था। एक माह में आठ तारीखें लगती थीं। कोई गोहाना, कोई सोनीपत, कोई हाईकोर्ट चण्डीगढ़ और कोई सुप्रीम कोर्ट दिल्ली। प्लॉट के बढ़े मूल्य से भी अधिक व्यय हो चुका था और ऊपर से परेशानी अलग।

यूँ हुई गुरु कृपा – एक प्रात: मैं अपनी डी.सी.एम. स्टोर पर बैठा इसी उधेड़ बुन में खोया था कि क्या करूं, कहाँ जाऊं? इस भाग-दौड़ से अच्छा तो प्लॉट ही छोड़ दूं। मगर यूं प्लॉट छोड़ देने से तो हर्जे-खर्चे की भारी डिगरी आएगी आखिर तीस साल का मुकदमा है। इसी मध्य एक हितैषी श्री मनोज गुप्ता आ पधारे। मैंने अपनी परेशानी से उसे अवगत कराया कि क्या करूं, मुकदमे से कैसे पीछा छूटे? मनोज बोला कि यह डूबती नैय्या तो कोई सिद्धयोगी ही पार लगा सकते

है। मैंने साँस भरते हुए कहा कि अरे भाई कहाँ है ऐसे योगी? वह तपाक से बोला, है क्यों नहीं? हमारे गुरु जी है। मेरे भाई सुभाष से पूछ लो। मैं तुरन्त सुभाष गुप्ता जी के पास ओ.बी.सी. में गया और गुरुजी के विषय में चर्चा की। गुप्ता जी ने कहा कि मैं कल इतवार को वहीं आऊंगा, तब बात करेंगे।

निर्धारित समय पर गुप्ता जी आए और कुछ चर्चा के पश्चात् बोले कि आजकल गुरु जी झांसी के कार्यक्रम पर है। आप पत्र लिख दें, झांसी कार्यक्रम के पश्चात् गुरु जी दिल्ली पधारेंगे, तब चल पड़ेंगे। पत्र लिखने की बात पर मैं उसे सामने अग्रवाल सत्संग भवन में ले गया यहीं पर गुरुदेव भगवान ने 24.11.89 से एक सप्ताह का योग कार्यक्रम रखा था। दोनों ने हाथ पैर धोए और मन्दिर के सामने तख्त पर बैठकर श्री चरणों में अपनी व्यथा भरा पत्र लिख दिया।

आ गई लहर शिवा के मन में – शीघ्र ही मुझे गुरु महाराज का आशीर्वादी पत्र पुष्प प्रसाद सहित नसीब हुआ। मैं पत्र को ज्यों का त्यों लेकर गुप्ता जी के पास ओ.बी.सी. गया। गुप्ता जी ने मुझे पुष्प प्रसाद खाने के लिए कहा। यह मेरे लिए आश्चर्य भरी बात थी। अस्तु, मैं सीधा घर पहुंचा और अपनी झोपड़ी में बनी मिन्नी गुफा मन्दिर में बैठकर यह महाप्रसाद ग्रहण किया। इसी क्षण से गुरु जी का हाथ अपने सिर पर मान कर मैं उस शुभ दिन की राह जोतने लगा, जिस दिन गुरुजी झांसी कार्यक्रम समापन कर दिल्ली पधारेंगे और मैं अपनी पीड़ा कह पाऊँगा।

मैं करता रहा इन्तजार गुरुवर दिल्ली आएँगे।
गुप्ता जी रहना आप तैयार, जब हम दर्शन पाएँगे।।

अन्ततः प्रतीक्षा की घड़ियां बीती और मैं गुप्ता जी के साथ पतित पावन के श्री चरणों की ओर बढ़ चला।

मेरे भाग्य ने पलटा खाया।
दिन राम मिलन का आया।।

मैं दिल्ली आश्रम में पहुंच कर कृत–कृत हो गया। ऐसी मन्द–मन्द मुस्कान वाले गुरुदेव को आसन पर विराजे देख कर, देखता ही रह गया और इतना बेखबर हो गया कि मुझे नहीं पता, मैंने गुरु जी से क्या कहा और गुरुजी ने मुझसे क्या कहा? कुछ पल मैं एक टकी से निहारता ही रहा। क्योंकि महात्मा तो बहुतों के दर्शन हुए मगर........अस्तु। मन शान्त हो गया, मानो मैं सब कुछ कह चुका हूँ और जी भर कर दर्शन किए। मैं एक ही रात वहाँ रहकर निहाल हो गया।

समय के अन्तराल के साथ चार मुकदमे तो शान्त हो गए और गुरु भगवान के आशीर्वाद से अन्ततः दावेदार के साथ आपसी समझौता हो गया। पूरे इक्कतीस साल बाद मैंने राहत की साँस ली।

यह काला दिन – कोर्ट केस से छुटकारा पाने का मैं आभार भी व्यक्त करने नहीं जा पाया था कि अचानक विपत्ति का ज्वालामुखी फूट पड़ा। दिनांक 25.6.1990 का वह काला दिन आया जो हमारी आपकी और न जाने किस–किस की खुशियाँ छीन कर ले गया। अखण्ड मण्डलाकार

ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपनी जीवन ज्योति भी प्रभूजी की ज्योति में लीन कर ली। गंगा नील धारा हरिद्वार का ह्रदय विदारक दृश्य जब याद आता है तो तरह–तरह के विचार फूट पड़ते हैं। जैसे –

हमें किस बात पर दाता, अकेले छोड़ जाते हो।
ना लेते हो करवट को, ना गर्दन को हिलाते हो।।
सिर फट जाए, धन लुट जाए, इंसा सब भूल जाता है।
मगर भूला ये नहीं जाता कि तुम निज धाम जाते हो।।

मुझे किस...........

श्री मद्भागवत में वर्णन आता है कि आँखो में मोतिया आ सकता है। पुत्र कुपुत्र हो सकता है। मगर सद्गुरु शिष्य से विमुख नहीं हो सकता। तदनुसार दयालु गुरुदेव भगवान मुझ पर बराबर अपनी कृपाएँ बनाए हुए हैं जिनमें से एक घटना का वर्णन श्री चरणों में कर रहा हूँ–

जब गुरुदेव पट्टी बाँधने आए : बात सन् उन्नीस सौ निनानवें के सर्दियों की है। मैं अपनी जनता निवार फैक्ट्री की सेल्स टैक्स की तारीख पर स्थानीय कार्यालय में साईकिल द्वारा जा रहा था। उक्त कार्यालय के सामने पहुंच कर अपना बांया पैर नीचे रखकर, सड़क पार करने हेतु यातायात निरीक्षण करके ज्यों ही सड़क पार करने लगा, त्यों ही एक बजाज स्कूटर ने तीव्रतम गति से मुझे टक्कर दे मारी। मैं धड़ाम से गिर गया। स्कूटर और चालक तथा पीछे बैठा सवार, खाली गैस सिलेण्डर सहित एक धमाके के साथ गिर गए।

भयंकर आवाज सुनकर दुकानदार बाहर निकल आए। राहगीर रुक गए किसी ने दौड़ कर मुझे उठाया। अब मुझे समझ आ चुका था कि मेरे साथ क्या हुआ है? शरीर में बेचैनी थी। दाएं हाथ के अंगूठे से रक्त बह रहा था। इस समय मैं भीड़ से घिरा हुआ था। मेरे मन्द स्वर ने डॉक्टर के पास चलने को कहा। तभी भीड़ में से एक मान्यवर बोले, ''रूई लगा लो, खून रुक जाएगा।'' मैंने कहा, कहाँ है रूई? उसने रूई देते हुए कहा, 'ये लो।' फिर उक्त महोदय बोले, ''पट्टी बांध दो।'' फिर कोई बोला, इथे पट्टी कित्थे है? जेब से पट्टी देते हुए पूज्यवर बोले, ये लो पट्टी रूई लगाने वाला लड़का बोला, हूँ ये कोई पट्टी है, ये तो पट्टा है। सज्जन जी छोटी पट्टी देते हुए बोले 'ये ले भई छोटी ले ले' लड़के ने अंगूठे पर पट्टी बांध कर शेष पट्टी काटने हेतु साथ वाली दुकान में आवाज लगाई– ओ वे गुलशन कैंची देईं। तब वृद्ध बोले ये लो कैंची। तब लड़का बोला, ऊँहूं ये तो कैंचा है, ओह छोटी हून्दी है। तब जेब से छोटी कैंची देते हुए मान्यवर जी बोले, ये लो छोटी ले लो।'

अब अंगूठे से खून बहना रुक गया था। मैं भी संभल गया था परंतु इतना ही बोल पाया कि श्रीमान् जी आप ये सब सामान किए लिए रखते हो? वे बोले भई यों ही जरूरत पड़ जाती है। अब भीड़ छँटने लगी। मैं भी सेल्स टैक्स वालों को जो वहीं आ गए थे, तारीख करने की कह कर सीधा घर आ पहुँचा। घर पर उपस्थित अपनी छोटी लड़की (इससे बड़ी तीनों विवाह के पश्चात्, गुरु कृपा से अपनी–अपनी ससुराल में आनन्द से हैं और वर्तमान में यह भी उसी श्रेणी में हैं) रेखा से दूध

पिलाने की कह कर अपने बैड पर लेट गया। सामने कृपा निधान के स्वरूप पर दृष्टि कर मैं धन्यवाद करने लगा कि बहुत बचाव हो गया....।

किस्ती तूफां से निकल सकती है,
बुझी समां फिर जल सकती है।
जब गुरु की दया दृष्टि पड़े तो,
तकदीर तभी बदल सकती है।

तभी एक विचार कोंधा, ओहो ! गुरु जी आप स्वयं... मैं मूर्ख पहचान नहीं पाया। अब क्या करूं? धिक्कार है मुझे, भारी गलती हो गई, क्षमा करना दाता–क्षमा करना.... कहाँ खोजूं....? गुरुजी टेक –

कार में आए कि जीप में आए, कैसे आए सरकार।
कि आते ही बन्द हो गई, मेरे खून की धार।।
गली गली में ढूंढ रहा हूँ, कहाँ पर रूप छिपाए हो।
गलती हो गई नहीं पहचाने, कैसी माया फैलाए हो।।
दिया सहारा, मिला किनारा, मैं तो था लाचार।
कि आते ही.........

इस प्रकार मुझ पर अनेक कृपाऐं हुई हैं। मुझे लगता है कि दीक्षा लेने के पहले से ही बहुत कृपाऐं हो रही हैं। उनमें से एक अनुभव मुझे अलबेला सा लगता है, जो संक्षिप्त में लिख रहा हूँ–

पिछला बोध : बात सन् उन्नीस सौ तिरासी की है। हम दो साथियों के संग किसी व्यापारिक कार्य से जमशेदपुर उर्फ टाटा नगर गए। लौटते समय यकायक प्रोग्राम ऐसा बना कि हम जगन्नाथपुरी चले गए। सारा दिन दर्शन लाभ लेकर सायंकाल साथियों ने अपने एक रिश्तेदार के यहाँ 'खुदरा रोड' लगभग 45 किलोमीटर दिल्ली साइड पर विश्राम करने का निर्णय लिया। हम खुदरा रोड स्टेशन से पैदल चल रहे थे कि मैं लहमें में आगे–आगे चलने लगा। कुछ ही चले थे कि एक मकान के सामने मेरे पैर स्वतः ही रुक गए। संयोग से यहीं साथियों के रिश्तेदार का मकान था। हम कमरे में सोफे पर इस प्रकार बैठे कि मेरा मुख गली की तरफ और दोनों साथियों का मुख मकान की तरफ था। मकान वाले लाला जी अन्दर पानी लेने चले गए। एक साथी बोला कि मकान के पीछे भी गली मालूम होती है। मैं बोला, काली–काली पत्थरों वाली, अन्धेरी, गीली और ढलान वाली गली है। तब तक लाला जी जल ले कर आ गए, बोले क्या कह रहे हो? मैं बोला यहाँ रेलवे गोदाम होता था। गोदाम के पास बालु रेत ही रेत थी। एक पानी की टूटी रेलवे की बहती थी। बहुत सारी झोपड़ी बनी थीं। वे लोग रेत की रोक लगा कर पानी रोकते थे ताकि झोपड़ी में पानी न आने पाए। कोई उस रेतीले बाँध को तोड़ देता तो काफी लड़ाई–झगड़ा होता था। हम उस रेत में

कंचा–पिट्ठू खेलते थे।

सभी आश्चर्य चकित थे। लाला जी ने पूछा कि क्या आपका यहाँ का जन्म है? मैंने यह सब पूर्व जन्म का आभास जताया कि मेरा जन्म तो पूर्वांचल के एक गाँव में वैश्य परिवार में हुआ था। गाँव का नाम याद आने पर बताता हूँ। चार अक्षर का नाम है। गाँव के किनारे उत्तर दिशा में एक रजबाहा बहता है। जहाँ हम स्नान, कपड़े धोने हेतु जाया करते थे। रजबाहा के पुल से दक्षिण में बसे गाँव में सीधा एक गली छोड़ कर, दूसरी गली वाला पहला मकान एल टाईप है। गाँव में सभी मकान कच्चे हैं हमारे मकान में दो गेट हैं। एक बड़े वाले भाग में पिलर के स्थान पर वृक्ष जैसा काला–काला थम्भ लगा है।

गाँव के पूर्व दिशा में डेढ़–दो मील पर रजवाहे के साथ–साथ स्कूल है। मार्ग के दाएँ बड़े–बड़े आम के बाग हैं। बाग से पत्ते झड़–झड़ कर इस रास्ते पर गिर जाते हैं, जो चलने पर टूटने की आवाज करते हैं। हमें डर लगता था। अत: कई बच्चे इकट्ठे होकर स्कूल जाते–आते थे।

परिवार में मेरी माँ श्री तगड़े शरीर में गेहूं रंग की थी। चेहरे पर चेचक के दाग थे। मुझे बहुत लाड़ प्यार से रखती थी। कुछ पढ़कर मैं गाँव से करीब एक मील चलकर रेलवे हाल्ट से रेलगाड़ी द्वारा निकट के एक शहर में सर्विस पर कार्यरत था। वापसी में गाँव के आदमी स्टेशन से ही मेरा थैला ले लेते थे। कहते थे बाबू हमीं ले चलीं, घरई पहुंचा देई। घर पर भी दो चार पांच आदमी इन्तजार में मिलते। कोई पाती पढ़ाने, कोई लिखाने। मैं सफेद कमीज, ग्रे पतलून (पैन्ट), काले शू, चिट्टी जुराब पहनता था। मेरी शादी होने से पहले ही, मामूली बीमार हो कर पंचतत्व में विलीन हो गया। भाई बहिन तो थे मगर चेहरे याद नहीं हैं। पिता श्री बचपन में ही चल बसे थे। साफ सुथरा सभ्य परिवार था...।

इसी मध्य लाला जी बोले कि हम तो किराएदार हैं। ये बातें तो पुरानी हैं उस समय मकान मालिक स्वयं यहाँ रहते थे। अब वे कार कोठी वाले बड़े आदमी हैं, कहो तो यहाँ बुला दूं। मैंने इंकार कर दिया। चाय की चुस्की लेते लाला जी बोले कि मरने के पश्चात् और जन्म से पहले की भी घटना याद होगी, वह भी सुनाओ।

चलत बिन पग सुनत बिनू काना : मैंने कहा ये सब तो कुछ पता नहीं। हाँ इसी जन्म के अपने बाल्य काल में अपने आंगन में चारपाई पर सो रहा था। मुझे दो सज्जन सूक्ष्म रूप से अपने साथ ले गए। वे भी सूक्ष्म शरीर में थे। शीघ्र ही हम वायुमण्डल में तैरने लगे। बराबर ऊपर बढ़ते जा रहे थे। कुछ समय पश्चात् पहाड़, वृक्ष और फिर भूमि की प्रतीती हुई। आगे चलकर दो मार्ग अंकित हुए। एक सज्जन मेरे आगे था, एक पीछे था। आगे वाले ने पीछे वाले का संकेत लेकर मुझे दाहिने मार्ग से ले चले। शीघ्र ही भवन दिखाई दिए। वहाँ बरामदा छोड़ कर दो लाईन लगी थी। मुझे छोटी लाईन में लगने का आभास मिला। वहाँ शान्तमयी वातावरण था। न बोलना, न हलचल, न इशारा। सभी स्वतः भाव समझ लेते थे। वे दोनों अन्दर कमरे में चले गए। मैंने एक क्षण भर कमरे में दृष्टि डाली तो एक मोटे से दाढ़ी वाले महाराज जी, मोटी–मोटी बही के पन्ने उलट रहे थे। तभी एक सज्जन कमरे से बाहर आया। उसने मुझे वापसी का संकेत किया। मैं उसी रास्ते लौटने लगा। मुझे

नहीं पता उक्त सज्जन कितनी दूरी तक मेरे साथ आया। मैं धड़ाम से चारपाई पर गिरा। गिरने से चारपाई की आवाज निकली। इस प्रकार चारपाई की आवाज तथा शरीर की हलचल से निन्द्रा भंग हो गई।

इस प्रकार की विभिन्न अनुभूतियाँ गुरु कृपा से ही सम्भव हैं, जो किसी न किसी रूप में सत्य प्रमाणित हो रही हैं।

जय गुरु देव !

सद्गुरु सत्ता–राज महल की सृष्टि

कृष्ण कुमार पाण्डेय

पिछले लेख में लाहिड़ी महाशय पर सद्गुरुदेव (बाबाजी) की कृपा को जानने का अवसर मिला। सद्गुरु की कृपा प्राप्त कर अपने को परमधन्य मानने लगे। जब वे हिम से युक्त प्रान्तर में तेल पीकर सोये। वे बाह्य जगत से हटकर अन्तर्जगत में प्रवेश कर अन्तरानुभूति के आनन्द का अनुभव कर रहे थे। इतने में उन्हें किसी पदचाप की आहट सुनाई पड़ी। उन्होंने देखा रात्रि के अन्धकार में एक व्यक्ति सूखे कपड़े दे रहा है। उसने कहा– चलो सद्गुरुदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे उस साधक के साथ चल दिये। कुछ दूर चलने पर अचानक उन्हें प्रकाश पुञ्ज दिखाई पड़ा। उस प्रकाश पुञ्ज को देखकर बोले– अरे यह क्या सूर्योदय हो रहा है ? साथ के साधक ने मन्द–मन्द मुस्कराते हुए कहा– भाई अभी तो आधी रात का समय है। यह स्वर्ण महल की आभा है। बाबा जी ने तुम्हारे लिए इस महल की सृष्टि की है। शायद तुमने कभी स्वर्ण महल की कल्पना बीज रूप में तुम्हारे कर्म संस्कार में पड़े थे। उसी का परिणाम है जिससे तुम्हारा पुराना कर्म बन्धन टूट जाय। साथ ही इस भव्य महल में सद्गुरुदेव तुम्हें क्रिया योग की दीक्षा भी देगें। सद्गुरु सद्शिष्य के संकल्पित कर्म बन्धन को सदैव नष्ट करने हेतु ऐसा प्रपंच खड़ा कर दिया है। साधक के साथ महाशय महल में प्रवेश किये। वहाँ जहाँ विभिन्न प्रकार के फूलों की सुगंध व्याप्त थी। वातावरण बड़ा मनोरम एवं आनन्दमय था। भक्त मण्डली वहाँ बैठकर सद्गुरु सत्ता का पूर्ण आनन्द ले रही थी। वे मन्द–मन्द स्वर में सद्गुरु सत्ता का गान कर रहे थे। कुछ ध्यान मग्न बैठे थे। साथ के हिमालयी साधक ने कहा– देख लो सद्गुरु ने तुम्हारे सम्मान हेतु ऐसी व्यवस्था बना दी है। इसका पूरा आनन्द उठाओ। महाशय स्वर्ण महल के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर अभिभूत थे। साथ ही सोचा यह महल तो मानवी कल्पना से परे है। इसका रहस्य समझ में नहीं आ रहा है। साथ के साधक ने कहा– महाशय सारा ब्रह्माण्ड सृष्टि कर्त्ता के विचारों से ही घनीभूत हो जाता है। वस्तुतः अन्तरिक्ष में झूलती पृथ्वी का भार ईश्वर का एक संकल्प मात्र है। इसी प्रकार इस समस्त सृष्टि का विस्तार दृष्टिगत होता है। साधक ने आगे कहा– ईश्वर ने सर्व प्रथम इस पृथ्वी की सृष्टि की, इसमें गतिशीलता भरी पुनः पृथ्वी के अणुओं का संयोजन कर सृष्टि के विस्तार की विभिन्न रूपों में कल्पना करते–करते यह सारा लामका पसार दिया। इसमें जीव, जन्तु, चेतन, अवचेतन तथा अन्यान्य आवश्यक वस्तु की सृष्टि कर दी। इस सृष्टि का सबसे बड़ा उपभोक्ता भी मनुष्य को बनाया। पुनः जब उस नियन्ता की इच्छा होती है। वह सब सम्वरण कर लेता है। वस्तुतः जब इस संरचना का उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा तो बाबाजी उसको विसर्जित कर देंगे।

लाहिड़ी महाशय उस दिव्य साधक के साथ उस स्वर्ण महल का भ्रमण एवं सत्संग करते हुए अपने को धन्य मान रहे थे। क्योंकि सद्गुरुदेव की कृपा से आज उनके पूर्व कल्पित स्वर्ण महल की सृष्टि का स्वरूप दिख गया। साधक ने यह भी बताया कि यह दिव्य महल पुनः अदृश्य हो जायेगा। इसके अणु परमाणु पुनः अपने – अपने तत्वों में विलीन हो जायेंगे। पातंजल योग दर्शन में संयम के विभिन्न सूत्र दिये गये हैं। यहाँ मात्र प्रासंगिकता के कारण बताया जा रहा है कि सद्गुरुदेव अपने शिष्य के चित्त में आये हुए संकल्पों की पूर्ति कर ही देते हैं। इसलिए व्यक्ति के जीवन में सद्गुरु की महती आवश्यकता है। लाहिड़ी महाशय को अब गुरु की ही कृपा से पूर्व के सारे वृत्तान्त दिखाई देने लगे। उन्होंने महसूस किया कि क्या इस प्रकार के चमत्कारों से भरपूर नजारे और भी देखने को मिलेंगे। सांकेतिक रूप में सद्गुरु ने बताया कि उद्देश्य की पूर्ति होगी। सद्गुरुदेव ने कहा– अब तुम्हें भूख लगी होगी। धन्य हो सद्गुरुदेव जो माता की तरह साधक की सभी आवश्यकताओं का ज्ञान रखते हैं। उसकी वे पूर्ति भी करते रहते हैं। बाबा जी ने मिट्टी का एक पात्र उठाया और कहा– इस पात्र पर हाथ रखो और जिस पकवान की संकल्पना करोगे वह तुम्हें प्राप्त हो जायेगा। महाशय ने संकल्पित भोज्य पदार्थ को सोचकर हाथ रखा। तुरन्त घृत मिश्रित गरम पकवान, गरम जलेबी, रसदार सब्जी तथा और मिष्ठान समक्ष प्रस्तुत हो गया। महाशय के भोजनोपरान्त भी सभी पात्र भरे के भरे ही रहे। भोजन के बाद जल की आवश्यकता पड़ी। सद्गुरुदेव का संकल्प लोटे की ओर संकेत हुआ। सभी भोज्य पदार्थ अदृश्य तथा उसके स्थान पर जल मौजूद मिला। सद्गुरुदेव ने बताया कि ईश्वर के राज्य में भौतिक कामनाओं की पूर्ति की बड़ी व्यवस्था है। लेकिन यहाँ कामना उठती ही नहीं है। यद्यपि दिव्य क्षेत्र में पृथ्वी का भी समावेश है। किन्तु यह माया प्रधान है। इसलिए सत्तत्व से रहित है। वहाँ कर्म से ही वस्तुओं की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार एक दिन अपने पूर्व साधन के कम्बल पर बैठे हुए थे। सद्गुरुदेव की कृपा का आनन्द भरपूर ले रहे थे, कि सद्गुरुदेव ने महाशय के ऊपर अपना कल्याणप्रद हाथ फेर दिया। उसी क्षण सात दिन की निर्विकल्प समाधि लग गई। उस परम आनन्द में आत्मज्ञान के भिन्न–भिन्न स्तरों का अतिक्रमण कर वे सत्यलोक के अमरधाम में पहुँच गये। माया का सारा आवरण स्वतः नष्ट हो गया। आप की आत्मा परमात्मा की वेदी पर पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गई। आठवें दिन गुरुदेव की संकल्पना से ही समाधि से विरत हुए। वे सद्गुरु के चरणों में बार–बार यही निवेदन करने लगे। गुरुदेव अब मुझे अपने चरणों में सदैव के लिए यहीं रख ले। किन्तु सद्गुरुदेव ने अपने प्रिय शिष्य को अपने आलिंगन पाश में बांधकर कहने लगे। बेटे इस जन्म में तुम्हें जन साधारण के सम्मुख जन कल्याण हेतु प्रमुख भूमिका निभानी है। इस जन्म से पूर्व तुम अनेक जन्मों की एकान्त साधना से धन्य हो चुके हो। इसलिए तुम्हें सांसारिक मनुष्यों में मिलकर जन कल्याण करना चाहिए। हिमालय में हमारी इस गुप्त मण्डली में सम्मिलित होने की इच्छा का तुम्हें परित्याग कर देना चाहिए। तुम एक आदर्श गृहस्थ योगी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए नगर के भीड़–भाड़ के बीच जीवन व्यतीत करो। तुम असंख्य उत्सुक

साधकों को क्रिया योग के माध्यम से आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करने के लिए चुने गये हो। सामान्य गृहस्थ के दायित्व की पूर्ति करते हुए समाज के कल्याणार्थ व्यक्तिगत स्वार्थ और आसक्ति का परित्याग कर पूर्ण निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए, ज्ञान के सुव्यवस्थित मार्ग से चलकर लोक कल्याण का कार्य भी सम्पन्न करो। संसार का परित्याग तुम्हारे लिए आवश्यक नही है। क्योंकि तुम पहले ही अपने विभिन्न कर्म संस्कारों को छिन्न–भिन्न कर दिये हो। तुम्हारे अभी बहुत दिन शेष हैं। इसलिए संसारी मनुष्यों के सूने हृदय में एक नई और मधुर दिव्य आशा का संचार करो। जिससे संसारियों को भी इस बात का ज्ञान हो जायेगा कि मुक्ति पाने का आन्तरिक आधार वैराग्य है न कि बाहरी त्याग।

इस प्रकार सद्गुरु सत्ता का सानिध्य प्राप्त कर लाहिड़ी महाशय अपने को धन्य मानने लगे। उन्हें अपने कार्यालय का कुछ ज्ञान ही नहीं रह गया। सद्गुरु से वार्ता, अन्य क्रिया कलापों से इतना आनन्द था, कि पूर्व की समस्त स्मृतियाँ स्मरण करके वे इस तृष्णारहित आध्यात्म लोक के आनन्द में आ गये। उनकी इच्छा थी कि सद्गुरुदेव मुझे अब यहाँ से जाने की अनुमति न दें तो अच्छा होगा। किन्तु महापुरुषों का आविर्भाव पृथ्वी पर लोक कल्याण के लिए होता है। किन्तु सद्गुरुदेव ने पुनः नीचे जाने की अनुमति सशर्त प्रदान की। सद्गुरु से आज्ञा पाकर वे लोक कल्याण हेतु धराधाम पर आ गये। गुरुदेव द्वारा आदिष्ट कार्य को करने लगे। इससे जगत का लोक कल्याण सिद्ध होने लगा। सद्गुरु सत्ता का ज्ञान सामान्य जनमानस करने लगा। जिज्ञासु अपनी तमाम जिज्ञासा को शान्त करने हेतु सत्संग करने लगे।

(क्रमशः–2)

भजन – कव्वाली

मोती राम गर्ग

टेक – मुझे तो गुरुदेव प्यारे हैं, नजर कोई और न आवे।

जगत के नाते झूठे हैं, झूठा ये संसार सारा है,
नहीं किसी से सम्बन्ध प्रभुजी, तू ही हमें प्यारा है,
तेरे चरणों की रज मिल जावे, तो जन्म सफल हो जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

करता हूँ जब याद तुमको, हृदय भर-भर के आता है,
उठती है झाग समुन्द्र की, दिल मचल-मचल जाता है,
गुरु शिष्य का यह नाता, कभी मिट ना पावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

सूरज और जमीं के बीच का, जो फासला खाली,
शक्ति तेरी है घूम रही, करता सब की रखवाली,
देता रहता है जीवन दान, नजर किसी को ना आवे।
मुझे तो गुरुदेव...

जगत के मोह में फंसकर, जीवन व्यर्थ गंवाया है,
नहीं कुछ पाया नहीं सीखा, नहीं कुछ समझ में आया है,
तेरी माया के चक्कर में प्रभुजी कहीं जीवन बीत ना जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

योग-आसन

भूधरासन

इस आसन के करने से शरीर की आकृति बिल्कुल उन्नत शिखर वाले पर्वत जैसी बन जाती है, अत: इस आसन का नाम भूधरासन है।

विधि– जिस प्रकार इससे पहिले बताया जा चुका है, उसी प्रकार लेटे रहकर अपने पाद तलों को थोड़ा आगे की ओर बढ़ाकर व हाथों की हथेलियों को बिल्कुल सीधी जमीन में जमाये रख कर बीच के भाग को ऊपर की ओर इस प्रकार उठा दें कि वह गोलाई में आकर पर्वताकार बन जाए, इस आसन में जहाँ कमर को ऊपर की ओर तनाव दिया जाता है। उधर शिरोभाग दोनों भुजदण्डों के बीच में लाकर समवस्थित कर दें, ठोड़ी को छाती में लगाये रखें। इस प्रकार करने से आकृति भूधराकार बन जायेगी। अत: इसको भूधरासन कहते हैं।

लाभ– शरीर में स्फूर्ति देता है, पृष्ठ भाग के स्नायु के दौर्बल्य को दूर कर बल बढ़ाता है, दोनों हाथों व पैरों के स्नायु सबल बनते हैं। जठराग्नि को बढ़ाता है। वात नाशक है।

ओह ! मेरे भगवान, आप कहाँ हो ?

लेखक- राजेन्द्र तिवारी, अभिभाषक, दतिया

(नोटः– लेखक एक पूर्व शासकीय एवं वरिष्ठ अभिभाषक व राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक आध्यात्मिक विषयों के समालोचक हैं।)

सामान्यतया यह पूछा जाता है कि ईश्वर कहाँ है ? मन की पवित्रता, निश्छलता, बाहरी जगत से पूर्णतः विच्छेदित होते हुये ध्यान की अवस्था में केन्द्रित हो कर एक बार मैंने भी भगवान से पूछा,' प्रभु आप कहाँ रहते हैं ?' मेरे " स्वयं" ने मेरे " मुझ" को ही अन्दर से जवाब आया– 'मैं तुम्हारे अन्दर ही तो हूँ, परन्तु तुमने मेरे लिये कोई जगह ही नहीं छोड़ी है। जब भी तुम मन में खाली हो, अकेले हो, पूर्णतः अहम–विहीन जागृति में हो, तभी मैं प्रकट होता हूँ।' वस्तुतः ईश्वर कोई वस्तु नहीं है जिसे कहीं से खींचकर लाया जा सके और न ही उसके लिये किसी स्थान– विशेष पर जाने की आवश्यकता है। हमें 'अपने–स्वयं' पर केन्द्रित होना है, तभी हम ईश्वर के अस्तित्व का आभास कर सकते हैं। ईश्वर का वास हमारी आस्था में है और यह हम पर निर्भर करता है कि हमारी आस्था उसमे कितनी दृढ़ता के साथ है। सामान्यतया हम देखते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व की आस्था अधिकतर व्यक्तियों मे, उनकी इच्छाओं की पूर्ति होने की शर्त पर ही निर्भर करती है । इस कारण उन्हें अपनी इच्छाओं की पूर्ति नही होने का भय होने के कारण ही वे ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास रखते हैं और उनके लिये, भय के कारण से ईश्वर का अस्तित्व है। इच्छाओं की पूर्ति हुई तो उनके लिये ईश्वर का अस्तित्व है और उनकी इच्छाओं की पूर्ति यदि नहीं हुई तो ईश्वर के प्रति उनकी आस्था कमजोर हो जाती है और फट से वे मन्दिर बदल लेते हैं। जबकि ईश्वर के प्रति हमारी आस्था आशावादी दृष्टिकोण के साथ पूर्णतः दृढ़तापूर्वक होना चाहिये। परन्तु होता यह है कि हम अपनी इच्छा–पूर्ति के साथ–साथ निराशाजनक सोच भी रखते हैं। कोई भी इच्छा निराशावादी भाव के साथ होने पर वह निरर्थक होती है। यदि सच कहा जाये तो हम अपनी कामना को शंका–रहित हो कर ईश्वर के समक्ष दृढ़ आस्था के साथ प्रस्तुत ही नहीं करते हैं और ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में शंका का भाव लिये रहते हैं, परिणामतः एक निराशा बनी रहती है। इसका कारण यह है कि हमें ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था नहीं रहती है। सामान्यतया हम उसके अस्तित्व का अनुभव नहीं कर रहे हैं, जबकि वह प्रत्येक क्षण हमारे समक्ष है। क्या हमनें कभी ध्यान दिया है कि प्रत्येक दिन वृक्षों पर हरी–हरी, पत्तियाँ विभिन्न प्रकार के सुगन्धित, सुन्दर पुष्प और इन पुष्पों में विभिन्न प्रकार के रंग कौन भर रहा है ? क्या हमने कभी ध्यान दिया है कि इनमें विभिन्न प्रकार सुगन्ध कौन भर रहा है? इस हेतु भले ही इसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक स्पष्टीकरण बता दिया जावे, परन्तु वह पर्याप्त नही है। क्या कभी कोई यह कहता है कि आज–कल मैं दिल धड़काने का काम कर रहा हूँ ? ईश्वर ने जितनी सांसे दी हैं तो दिल में भी उसी के द्वारा धड़कन पहुंचाई जा रही है। यदि यह सच नहीं है तो मरने के बाद कोई दिल धड़का के बताये !

कुछ दार्शनिक, ईश्वर को ऊर्जा (एनर्जी) अथवा चेतना के स्वरूप में मानते हैं, जिसे कभी स्पर्श नहीं किया जा सकता, इसे कभी देखा नही जा सकता और न ही किसी स्थान विशेष पर इसे रखा जा सकता है। जिस तरह हम विद्युत बल्ब से होने वाले प्रकाश को देख सकते हैं, प्रकाश विद्युत की उत्पत्ति है, वह विद्युत नहीं है, लेकिन हम विद्युत को स्पर्श नहीं कर सकते। इसी तरह हम सभी और यह सम्पूर्ण प्रकृति ऊर्जा की उत्पत्ति है, ईश्वर की उत्पत्ति हैं। ल्यूसिले गेमब्रेल ने कहा है " आप इस पृथ्वी पर ईश्वर के एक अनुपम उपहार हैं। आप एक चमकते हुये सितारे हैं। जब आप स्वयं को आयना के समक्ष प्रत्येक दिन सुबह देखते हैं तो अपने आप से कहें ' मैं संभावना हूँ, मैं आनन्द हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रेम हूँ और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि मैं "हूँ"।

क्या कभी मृत्यु के बाद और जन्म से पूर्व के अस्तित्व के बारे में हम सोचते हैं ? मृत्यु के बाद जैसा है, वह जन्म के पूर्व भी होना चाहिए। वस्तुतः हमारा शरीर आत्मा का वाहन है। आइये, विचार करें– 'मैं अपने पूर्व–जन्म में कहीं था और अनेकों व्यक्ति मुझसे अत्यन्त निकट के रिश्ते में मेरी पहचान के साथ जुड़े रहे होंगे। इस जन्म मे, मैं अपनी वर्तमान पहचान से सम्बन्ध रखते हुये मेरे अपने अनेकों रिश्ते हैं। मेरी मृत्यु के बाद, जब मेरा पुनर्जन्म होगा, तब फिर नये रिश्ते बनेंगे। मैंने अपने पिछले जन्म के शरीर और उससे जुड़े रिश्तों को छोड़ा है, मैं अपने इस वर्तमान शरीर और रिश्तों को अपनी मृत्यु के पश्चात छोड़ दूँगा। यहाँ प्रश्न तो यह है कि मेरा कौन से शरीर, आकृति, रिश्ते की पहचान, जो स्थाई हो और मिटने वाली न हो, वास्तविक और सही है ? सच तो यह है कि हमारी पहचान और रिश्तें स्थायी नही हैं और भौतिक शरीर की मृत्यु होने के बाद हमसे छूट जाते हैं। मेरी मृत्यु के बाद मेरे साथ कुछ भी नहीं जाता है और हम अपनी ऊर्जा को अस्थायी सम्बन्धों तथा मिथ्यापूर्ण पहचान की उलझनों मे बर्बाद कर रहे हैं। मृत्यु के बाद की स्थिति के बारे में हम अंधेरे में हैं। पता नही उसके बाद दुख है या आनन्द ?

आत्म–चिन्तकों के द्वारा यह स्थापित किया जा चुका है कि मृत्यु के बाद की स्थिति इस पृथ्वी पर किये गये हमारे कर्मों पर आधारित होती है। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते थे। परन्तु कई व्यक्ति और बच्चे अपने पूर्व–जन्म की महत्वपूर्ण घटनाओं के विवरण सुनाते हैं। सत्यापन होने पर वे घटनायें सही भी पाई जाती हैं। प्रत्येक पुनर्जन्म होने पर हमारी सम्पूर्ण पहचान परिवर्तित हो जाती है। ऐसी स्थिति में गम्भीरतापूर्वक हमें अपने व्यवहारिक जीवन के संदर्भ में कुछ प्रश्नों पर सोचना है – क्या हम अपनी एक अस्थाई व छद्म पहचान को ले कर मरने–मिटने पर उतारू नही है ? क्या यह मूर्खतापूर्ण कार्य नहीं है ? क्या यह मूर्खता नहीं है कि लोग अत्यन्त दृढ़ता के साथ भावनात्मक रूप से अपनी जाति एवं सम्प्रदाय से जुड़कर दूसरों के साथ ईर्ष्या रखते हैं ? क्या इसकी कोई सुनिश्चितता है कि वर्तमान जीवन में हम जिस जाति से जुड़े हुये हैं, अगले जन्म में भी अपनी इस जाति में ही पुनर्जन्म लेंगे ? फिर ये द्वेष क्यों ?

सत्गुरुदेव की कृपा

श्याम मनोहर श्रीवास्तव, ललितपुर

परिचय– मेरा नाम श्याम मनोहर श्रीवास्तव उर्फ गुडडे भाई सर वा गुडडे है। तथा मेरे पिता का नाम स्व. श्री दुर्गाप्रसाद वर्मा था। मेरे पिता जनपद झाँसी में सन् 1959 में ललितपुर कलैक्ट्रेट से झाँसी कलैक्ट्रेट स्थानान्तरित हो गये थे। हम लोग मूल निवासी ललितपुर के हैं। पिता जी के झाँसी स्थानान्तरण हो जाने से मेरी तथा मेरे अन्य भाइयों की पढ़ाई शिक्षा आदि झाँसी में हुई। मैं भाइयों में दूसरे नम्बर का लड़का था। मैं शिक्षा के समय से ही धार्मिक प्रवृत्ति का था पूजा पाठ किया करता था। पढ़ाई के समय में ही मैंने शिवोहम वाले महाराज जी श्री श्री 1008 श्री आत्मानन्दजी से दीक्षा ले ली थी। सन् 1970 जून माह में मेरी निप्रक्ति कलैक्ट्रेट झाँसी में हो गई तथा पौस्टिंग तहसील झाँसी में लिपिक के पद पर हो गई। झाँसी में मेरा मकान लक्ष्मी व्यायाम मंदिर के पास ही था जहाँ गुरुदेव भगवान के योग सम्बन्धी कार्यक्रम होते थे। मेरे घर के सामने डॉ. ओम प्रकाश दीक्षित रहा करते थे उनका व हमारा घरोवा था। डॉ. ओम प्रकाश दीक्षित ने गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी से पूर्व में दीक्षा ले रखी थी। प्रतिवर्ष की भाँति श्री गुरुदेव भगवान का योग प्रचार सम्बन्धी कार्यक्रम अक्टूबर माह वर्ष 1970 में सीपरी झाँसी में पुराने पोस्ट ऑफिस में हो रहा था। श्री दीक्षित जी ने मुझ से कहा कि मेरी गुरुजी आ रहे हैं तथा सीपरी बाजार में कार्यक्रम है दर्शन करने चलोगे। उस समय प्रातः काल का समय था। मैंने उत्तर दिया कि अभी ऑफिस (तहसील) जाने में बहुत समय है चलो चलते हैं 10 बजे तक वापिस आ जाऊँगा। मैं डॉ. ओम प्रकाश दीक्षित के साथ सीपरी बाजार श्री गुरुदेव जी के दर्शनार्थ गया। सत् गुरुदेव व भगवान ऊपर वाले कमरे में थे। जैसे ऊपर पहुँचा कमरे दरवाजे बन्द थे तथा बाहर एक सज्जन सफेद धोती कुर्ता पहने खड़े हैं। मैंने समझा की इन्हीं के दर्शनार्थ हम आयें है मैंने झुक कर उनके चरणों में प्रणाम किया तो उन्होंने हाथ से कमरे की ओर इशारा किया वहाँ अन्दर कमरे में जाओ। मैंने डॉ. दीक्षित जी से पूछा तो उन्होने बताया कि श्री ईश्वरी प्रसाद खडडर हैं गुरुदेव जी के विशेष कृपा पात्र है हम लोग इनको बाबा जी कह कर बुलाते हैं। मैंने जैसे कमरे में प्रवेश किया सामने एक चार पाई पर गोल मटोल सेठ जी जैसे बैठे हैं तथा नीचे कई भाई बैठे हैं पत्रों के जवाब लिखा रहे हैं। मैंने उनके पास जाकर उनके चरणों में जैसे प्रणाम किया मैं शून्य में आ गया ऐसा अनुभव हुआ जिसकी मैं व्याख्या नहीं कर सकता। श्री प्रभूजी ने कहाँ लल्ला बैठ जाओ। मैं अन्य भाईजी की भाँति वहीं बैठ गया। महाराज जी ने हम से पूछा लल्ला तुम पत्र लिख लेते हो। मैंने उत्तर दिया हाँ महाराज जी पत्र लिख लेता हैं। महाराज जी ने मुझे एक पोस्ट कार्ड दिया और उन्होंने एक पत्र पढ़कर सुनाया तथा कहा लल्ला इसका उत्तर इस प्रकार से लिख दो। मैंने पास बैठे अन्य भाईयों से जो पत्र लिख रहे थे पूछा ऊपर सम्बोधन में लिखा जाता है और मैंने वैसा ही सम्बोधन कर अनेक पत्र लिखे। चूंकि ऑफिस का समय हो रहा था जाना जरूरी था

परन्तु मेरा मन जाने का नहीं हो रहा था। मैं ऑफिस गया और छुट्टी लेकर फिर महाराज जी के पास वापिस पहुँच गया।

महाराज जी के दर्शन के बाद मेरी इच्छा दीक्षा लेने की हुई। परन्तु मैं क्या करता मेरी दीक्षा हो चुकी थी। मैंने डॉ. ओम प्रकाश दीक्षित से कहा भाई सा. मेरी इच्छा महाराज जी से दीक्षा लेने की है परन्तु मैं पहले से दीक्षित हूँ। उन्होंने कहाँ चलो बाबा(ईश्वरी प्रसाद खडडर) से प्रार्थना कर पूछ लेते हैं इस पर दोनों बाबा के पास गये और उन्हें सारी बात बतलाई। उन्होने महाराज जी से प्रार्थना कर पूछा। मुझे दीक्षा की आज्ञा मिल गई। दूसरे दिन दीक्षा का पूरा सामान लेकर जैसा बताया गया था दीक्षा के लिये उपस्थित हो गया। दीक्षा के उपरान्त जैसे गुरुदेव भगवान ने बतलाया (आज्ञा दी) वैसा करके मैं हवन में बैठ गया। आज्ञा अनुसार प्रात: रात्रि आरती पूजा करके हवन मैं बैठने लगा। प्रत्येक रविवार को बाबा (ईश्वरी प्रसाद खडडर) के घर सत्संग में शामिल होता रहा तथा ध्यान में जो अनुभव हुआ करते थे उन्हें बाबा को बतलाया करता था। इसके अलावा सप्ताह के अन्दर जिन भाईयों के यहाँ सत्संग होता था जाया करता था। उस समय मेरी शादी नहीं हुई थी। तहसील में करीब 7– 8 महीने नौकरी करने के उपरान्त मेरा स्थानान्तरण ओन डेपूटेशन सिविल डिफैन्स का पलिय झाँसी में हो गया। यह विभाग भी कलैक्टर के अण्डर में था। मेरी साधना बढ़ती ही रही।

यह घटना वर्ष 1971 की है। मैं सिविल डिफेन्स कार्यालय झाँसी में लिपिक के पद पर कार्यरत था। उस समय मेरी शादी नहीं हुई थी। मेरे अधिकारी का नाम श्री देव व्रत दीक्षित था। वह हमसे बहुत स्नेह रखते थे। उस ऑफिस में कई सरकारी वाहन थे उनमें से एक मोटर साईकिल रोयल इन फील्ड (भारी गाड़ी) थी उसे मैं ही चलाता था। नई उम्र होने के कारण बहुत तेज मोटर साईकिल चलाने की आदत थी। एक दिन छुट्टी में मैं और मेरे चचेरे भाई मोटर साईकिल से पिता जी बहुत मना करने पर झाँसी से ललितपुर आये। ललितपुर में रिश्तेदारियों में तथा चचेरे भाई के घर मोटर साईकिल से घूम रहे थे। चचेरे भाई को स्टेशन पास घर छोड़कर तथा एक रिश्तेदार को बैठा कर शहर की ओर आ रहे थे। मोटर साईकिल बहुत तेज थी सामने एक दम एक साईकिल वाला आ गया। मैंने बड़े जोर से ब्रेक मारे तो हमारे पीछे बैठे रिश्तेदार मेरे ऊपर से निकल कर मोटर साईकिल के अगले पहिये के पास गिरे मेरे उपर से निकलने बाद मेरे सिर हैंल्डिग में लगा मैं गिरा और मेरे ऊपर मोटर साईकिल गिरी। मेरे सर में चोट आई तथा गाड़ी की किक मेरे गालों में घुस गई। मैं बेहोश हो गया। चूंकि हम लोग ललितपुर के रहने वाले थे तथा मेरा पूरा खानदान चाचा वगैरह रिश्तेदार यही थे उनको जैसे पता लगा उन्होने झाँसी में पिता जी को सूचना दी चूंकि पिता जी झाँसी कलैक्ट्रेट में थे उन्होंने इसकी सूचना जिलाधिकारी को दी उस समय ललितपुर जिला नहीं था तथा ललितपुर के सारे अधिकारी एस.डी.एम., डी.वाई.एस.पी. आदि जिलाधिकारी झाँसी के अण्डर में थे। एक तरह से एक्सीडेन्ट पुलिस केस था परन्तु प्रभूजी की कृपा जिलाधिकारी झाँसी सब अधिकारियों को फोन कर दिया तो कोई रिपोर्ट नहीं लिखी गई तथा मोटरसाईकिल तथा मुझे किसी वाहन से सही सलामत भिजवाने के आदेश दिये। ललितपुर में मुझे प्राथमिक इलाज कराने के

बाद झाँसी लाया गया। झाँसी में सरकारी अस्पताल में प्राईवेट वार्ड में भर्ती कराया गया तथा इलाज कराया।

एक्सीडेन्ट बहुत ही खतरनाक था। तेरह दिन तक बेहोश रहा। नाक मुँह से तरल पदार्थ खाने को दिया जाता था। जब 13 दिन के बाद होश आया तो पागल हो गया (हैडैजरी) सभी लोग परेशान हो गये। मेरे अधिकारी तथा कलैक्ट्रेट अनुभाग के समस्त कर्मचारी दोनों समय आकर डॉक्टर से बात किया करते थे। मेरे परिवार के लोग मेरा इलाज कराने हेतु बाहर ग्वालियर आगरा जाने की कहने लगे। मेरे भाइयों को पता चला तो सारे गुरु भाई मुझे देखने आये। बताते हैं कि जब मैं पागल था तो लोगों को मारा करते थे कांटते थे तो मुझे बांध दिया जाता था। कुछ दिनों बाद गुरुदेव भगवान सिद्धगुफा आश्रम से भोपाल किसी कार्यक्रम में जा रहे थे। सभी गुरुभाइयों को प्रभूजी के झाँसी से भोपाल निकलने का पता था। गुरुदेव जी के दर्शन हेतु सभी भाई बहन स्टेशन पहुँचे। गुरुदेव भगवान के आगमन एवं दर्शन करने के उपरान्त सभी भाई बहनों ने गुरुदेव भगवान से प्रार्थना की कि हमारा एक भाई है जो अपने दिमाग का संतुलन खो बैठा है पूरी घटना बताई और प्रार्थना की कि प्रभू कृपा करदें जिससे वह जल्द स्वस्थ्य हो जाये। गुरुदेव भगवान ने उसी समय पुण्य प्रसाद दिया और कहा कि लल्ला उसे यह परसाद खिलाना वह सात दिन में घर आ जायेगा।

सभी गुरुभाई बहनों ने प्रभूजी द्वारा दिया गया परसाद मेरी माँ को दिया और बताया इस प्रसाद के खाने के बाद सात दिन के अन्दर घर पहुँच जाएगा। मेरी माँ ने मुझे थोड़ा – थोड़ा परसाद छः दिन तक खिलाया मैं पाँचवे दिन होश में आया तो मैंने लोगों से पूछा मैं कहाँ हूँ लोगों ने बताया कि अस्पताल में हो मैंने कहा मैं अस्पताल में क्यों हूँ तो लोगों ने कहानी बनाकर समझा दिया तो मैंने कहा मैं घर जाना चाहता हूँ तो लोगों ने कहा कि हाँ डाक्टर साहब से पूछ कर चलेगें। शाम को डॉक्टर आये तो मैंने उनसे घर जाने के बारे में कहा तो समझाने लगे कि तुम ठीक हो जाओ चोटें ठीक हो जाए चले जाना। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। छठवें दिन प्रातः डॉक्टर साहब राउण्ड पर आये। मैंनें उनसे घर जाने के लिए कहा तो कहने लगे कि कल चले जाना। मेरे दोस्त भी मेरे पास रहा करते थे। मेरे बहनोई के छोटे भाई भी आते जाते थे हम लोग अधिकांश साथ रहा करते थे। मैंने अकेले में उनसे कहा कि हमें घर जाना और यहाँ लोग हम को जाने नही दे रहे हैं तुम रात को आ जाना हम साथ चलेंगे और मैंने यह भी कहा मैं बाहर लेटूगा उन्होंने मेरा मन रखने को हाँ कर दी। मैंने उनका रात को बहुत इन्तजार किया परन्तु वह नहीं आये और न मुझे बाहर लेटने दिया गया।

अगला दिन सातवां दिन था मैं सुबह उठा देखा मेरे छोटे चाचा मेरे साथ थे और सब लोग अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने अपने अपने घर चले गये थे। चाचा जी बहुत कमजोर थे। मैंने देखा चाचाजी के आस पास कोई नहीं है मैं उठा और बाहर की तरफ चल दिया। मैं बहुत कमजोर हो गया था डर के मेरे चाचा ने मुझको रोका नहीं मेरे पीछे – पीछे चल दिये। मैं हास्पिटल के बाहर आ गया तथा चाचाजी मेरे पीछे चलते रहे। मैंने सोचा कि यदि घर गया और रास्ते में लोग मिल जायेगें तो वापिस अस्पताल ले जायेगें। इसलिए मैं अपने दोस्त जो अस्पताल में रहा करता था तथा गुरु

भाई भी थे (अरुण गोलवलकर) नरसिंह राव टोलिया में रहता था। उसी के घर की ओर चल दिये तथा कुछ देर चलने पर अरुण के घर पहुँच गया। मेरे पहुंचने पर अरुण एवं उसकी माँ को बड़ी प्रसन्नता हुई। आराम से बैठाया चाचाजी भी साथ में थे वह भी बैठ गये। मेरी दाढ़ी बढ़ी थी मैंने अरुण से कहा कि नाई बुलवाओ दाढ़ी बनवानी है अरूण ने नाई की व्यवस्था की। नहाने के लिए थोड़ा गरम पानी से नहलाया इसके बाद जहाँ गुरुदेव जी प्रभूजी के स्वरूप विराजमान थे दोनों आरती की तथा बाद में पूरा खाना खाया। अरुण ने कहा चलो अब घर चलते हैं। तांगा किया और कुछ देर में हम घर पहुंच गये। घर के लोग बड़े खुश हुए। पिता जी ऑफिस (कलैक्ट्रेट) चले गये थे। उस समय टेलीफोन कम थे। सामने बरफखाने से पिता जी को मेरे घर पहुँचने की सूचना दी। पिता जी ने कहाँ कि ठीक है घर रहने दो शाम को अस्पताल जाकर छुट्टी करा लेगें। प्रातः काल जब डाक्टर राउण्ड पर आये तो मेरे स्थान पर मेरा एक दोस्त लेट गया और मुंह ढंक लिया। डॉ. ने पूछा तो बताया की पेसैन्ट सो रहा है। डॉक्टर बोले सोने दो नहीं तो अभी घर जाने की कहेगा। उसी दिन शाम को पिता जी ने अस्पताल जाकर मेरी छुट्टी करा दी।

इस प्रकार गुरुदेव भगवान की कृपा एवं प्रसाद की कृपा से सात दिन के अन्दर घर वापिस आ गया। यद्यपि पूर्ण स्वस्थ्य नहीं हुआ था।

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण
उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

सिद्धयोग पत्रिका में आगामी अंकों में 'योगिक प्रश्नोत्तरी' कॉलम का प्रकाशन पाठकों के अनुरोध पर प्रारम्भ किया जा रहा है।
अतः जिज्ञासु अपने योग सम्बन्धी इस कॉलम के अन्तर्गत भेज सकते हैं।

– सम्पादक

ध्यान द्वारा यथार्थ स्थिति का बोध

यदि अपवाद को अलग कर दिया जाय तो पहाड़ों पर रहने वाले स्त्री–पुरुष सामान्यतया सत्यवादी, मेहनती, सरल एवं विश्वासी होते हैं। अधिकांशतः आस्तिक एवं आध्यात्मिक भी होते हैं। इन्हीं पहाड़ों के निवासी हमारे एक गुरुभाई दम्पत्ति हैं, जिनका नाम श्री आर.सी. ठाकुर है। दुनिया के प्रपंचों से दूर यह दम्पति अनन्य ही गुरु चरणानुरागी हैं। सन् अस्सी के दशक का प्रसंग है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव श्री चैत्र रामनवमी पर, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम पर, जाना तो ये सपत्नीक चाहते थे परंतु कुछ कार्य ऐसा आ गया कि इनकी धर्मपरायणा पत्नी साथ नहीं जा सकीं एवं ये अकेले ही श्री सवाई धाम पहुँचे श्री सवांई धाम पर पहुँच कर इन्होंने आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के युगल कमल चरणों में ज्योंही प्रणाम निवेदित किया, श्री आराध्यदेव जी ने आशीर्वाद देने के बाद कि – 'लल्ला! अमुक कमरे में ठहर जाओ। उस कमरे में श्री दयानन्द नाम के एक महात्मा तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के एक महात्मा और ठहरे हुए हैं।'' आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी, उस कमरे में जाकर अपना सामान रखे एवं अपना बिस्तर लगा लिये। वे उस कमरे में आनन्द से निवास करने लगे। श्री दयानन्द जी भी महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के ही महात्मा थे। चूँकि श्री दयानन्द जी दोनों आदमियों से परिचित थे अतः उन्होंने इन दोनों लोगों का आपस में परिचय कराया। हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री आर.सी. ठाकुर जी का परिचय कराते हुए उन्होंने उस महात्मा से कहा कि – ''ये, योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के कृपापात्र एवं ध्यानाभ्यासी बच्चे हैं तथा उस महात्मा का परिचय कराते हुए श्री आर.सी. ठाकुर से बतलाये कि– ये महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के बड़े ही विद्वान एवं प्रचारक हैं।'' आपने लगभग सभी ग्रंथों का अध्ययन एवं मनन किया है तथा इनकी धार्मिक ग्रंथों पर बहुत अच्छी पकड़ है।' आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी ने आराध्यदेव की चरणशरण ग्रहण करने से पूर्व योगिराज श्री विवेकानन्द जी के अनेकानेक ग्रंथों एवं पुस्तकों का अध्ययन किया था तथा इस कारण इनका उस तरफ (श्री विवेकानन्द जी एवं उनकी साधना पद्धति की तरफ) आध्यात्मिक झुकाव अधिक था। महात्मा दयानन्द जी ने कहा कि ''और सब तो ठीक है परंतु आपके गुरुदेव मूर्ति एवं फोटो पूजक हैं, यही बात गलत है। शेष सभी कार्य तो ये ठीक ही कर रहे हैं। यही इनका एक कार्य गलत है।'' आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी ने उनके विचारों का खण्डन किया एवं कहा कि ''हमारे गुरुदेव में कोई शंका करने की गुंजाइश ही नहीं है। ये पूर्ण योगी एवं गलत–सही तथा किंतु–परंतु की परिधि से बाहर स्थित हैं। अतः इनके किसी कार्य में गलती देखना या दोष निकालना सर्वथा अनुचित है।'' आदरणीय भाई जी का यह उत्तर सुनकर वह महात्मा श्री दयानन्द निरुत्तर हो गया। कुछ देर बाद उसने प्रश्न किया कि– ''अब आप यह बताइये कि स्वामी विवेकानन्द बड़े योगी हैं या आपके गुरुदेव?'' यह बड़ा ही कठिन प्रश्न था, दो योगियों की आध्यात्मिक शक्ति का आंकलन करना। अतः

आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी ने कहा कि– 'इस प्रश्न का उत्तर अभी तत्काल देने की स्थिति में नहीं हूँ, बिना ठोस अनुभव के कुछ कहना गलत रहेगा। आपके प्रश्न का उत्तर मैं अनुभव के आधार पर कुछ दिन बाद दूंगा।' ये महाप्रभु जी के अवतारोत्सव सप्तमी, अष्टमी और नवमी के बाद भी दो दिन आश्रम पर रूके रहे। इनके वापस लौटने वाले दिन श्री गुरुदेव भगवान ने त्रिभुवन वंद्य महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती की एवं उसके बाद श्रीमद्भागवत्गीता के दो अध्यायों का पाठ कराये एवं आदेश दिया कि – ''जो जहाँ है वही ध्यान में बैठ जाय। जिनका ध्यान नहीं लगता वह उपांसु विधि से अपने गुरुमंत्र का जप करे। जिसने अभी तक योगदीक्षा नहीं ली है वह पंचाक्षरी मंत्र (ॐ नमः शिवाय) का जप करे।' इतना कहकर आराध्यदेव जी अपने स्थान से उठे एवं आश्रम के अन्य कार्यक्रमों में लग गये।

आदरणीय भाई जी ध्यान करने लगे तो वही प्रश्न बार–बार आ रहा था कि हमारे गुरुदेव बड़े है या स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने अल्पायु में ही देश विदेश में योग एवं आध्यात्म विद्या का धुंआधार प्रचार किया। यह विचार मन में आते ही इनका ध्यान लग गया एवं श्री गुरुदेव भगवान का दर्शन होना आरम्भ हो गया। कुछ समय पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान का दिखना बंद हो गया एवं श्री गुरुदेव के स्थान पर एक छोटा प्रकाश का गोला दिखना आरम्भ हो गया। प्रकाश का वह गोला बढ़ते–बढ़ते अखण्ड मण्डलाकार हो गया एवं उसमें से 'ओंकार' की लम्बी ध्वनि सुनायी देनी आरम्भ हो गई तथा फिर उसी अखण्ड मण्डलाकर गोले में से 'ओंकार' की एक मोटी किरण निकलनी आरम्भ हुई एवं उसके साथ 'ओंकार' की ध्वनि भी साथ–साथ ही थी जो लच्छी रूप तार की शक्ल में इनके हृदय में आकर समाहित होने लगी। एक बार 'ओंकार' निकल कर अभी लगभग एक फुट की लच्छी बनाते हुए इनके हृदय की तरफ बढ़ती, तब तक दूसरा 'ओंकार' शब्द रूपी लच्छी बनना शुरू हो जाता एवं उसके एक फुट आगे बढ़ते ही अगला 'ओंकार' शब्द उस प्रकाशपुंज से निकलता रहा एवं सभी क्वायल रूप में बनकर इनके हृदय में समाहित होते रहे। यह दृश्य काफी समय तक इन्हें दिखलायी देता रहा। फलस्वरूप इन्हें अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होती रही। श्री मद्भगवतगीता के आठवें अध्याय का तेरहवाँ श्लोक है कि

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् ॐ इस एक अक्षर रूप ब्रहम को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मुझ ब्रहम का चिन्तन करता हुआ, जो शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति अर्थात् मुझको ही प्राप्त होता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ओंकार ब्रहमस्वरूप है, अतः ब्रहम से ही ओंकार शब्द का उच्चारण हो रहा है। इसको ज्यादा सरल एवं सुबोध भाषा में इस प्रकार समझा जा सकता है कि मेरे गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज पूर्ण ब्रहम हैं और यही कारण है कि उनके अखण्ड मण्डलाकार स्वरूप से 'ओंकार' अनवरत निकल रहा था। ऐसा हमारे श्री गुरुभाई जी को दृष्टिगोचर हुआ। इस प्रकार हमारे इस भाई जी को स्पष्ट ज्ञान हो गया कि हमारे आपके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं।

इसी साल आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी को कलकत्ता शहर जाना पड़ा। संयोगवश जहाँ ये रुके थे, उसी के बिल्कुल नजदीक महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय का वैदिक धर्म का प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सायंकाल आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी उस कार्यक्रम को उत्सुकतावश देखने गये। उस कार्यक्रम के मुख्य प्रचारक एवं वक्ता महाराज निरंजन सरस्वती जी थे, जो उस समय जगन्नाथ पुरी के शंकराचार्य भी थे। वहीं पर हमारे भाई जी की मुलाकात ब्रह्मचारी श्री दयानन्द सरस्वती जी से हुई। इन दोनों लोगों में आध्यात्मिक एवं सांसारिक चर्चायें भी हुई। ब्रह्मचारी श्री दयानन्द जी ने पूछा 'यहाँ कैसे आना हुआ?' आदरणीय भाई जी ने उत्तर दिया – 'भाई साहब! कुछ सांसारिक कार्य से यहाँ (कलकत्ता) आया था तो पता चला कि यहाँ आपके सम्प्रदाय का प्रचार कार्यक्रम चल रहा है, आज आया तो काफी आनन्द आया।' श्री दयानन्द जी ने परामर्श दिया कि 'आप मुख्य आचार्य जी से मिलने का कष्ट करें, वह आपके रहने की व्यवस्था यहीं करा देंगे, ऐसी हमें आशा है।' उस दिन के सायंकालीन कार्यक्रम के बाद आदरणीय भाई जी, महात्मा एवं मुख्यवक्ता परम आदरणीय श्री निरंजनदेव सरस्वती जी महाराज से मिले एवं उन्हें प्रणाम निवेदित किया। उन्होंने भाई जी से प्रश्न किया कि – 'कहाँ से आये हो?' आदरणीय भाई जी ने उनसे निवेदित किया कि 'मैं योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ, कुछ सांसारिक कार्यवश कलकत्ता आया हूँ तथा आपके इस कार्यक्रम स्थल से थोड़ी दूर होटल में रुका हुआ हूँ। टहलते हुए जा रहा था तो वेद ध्वनि सुनायी दी, फलस्वरूप चलते हुए यहां आ गया एवं यहाँ हमें बड़ा मनोहारी लगा। परम आदणीय श्री निरंजन देव जी महाराज, अन्तर्जगत के अभ्यासी थे अतः हमारे आपके गुरुदेव भगवान को खूब अच्छी प्रकार से जानते थे। उन्होंने पूछा कि – 'यहाँ कितने दिन का कार्य है।' आदरणीय भाई जी ने उत्तर दिया कि 'अभी तीन दिन का कार्य है।' श्री निरंजन देवजी महाराज ने कहा कि 'अभी जिस होटल में रुके हो, वहाँ चले जाओ एवं अपना सब सामान लेकर यहाँ आ जाओ। यही कमरा नम्बर अमुक में अपना बिस्तर लगा लो। दिन के समय अपना कार्य करो तथा प्रातः तथा सायंकाल यहाँ के प्रचार का आध्यत्मिक लाभ उठाओ। तुम्हारे भोजन की व्यवस्था इसी कार्यक्रम के साथ रहेगी।' इसके साथ ही उन्होंने अपने एक अनुयायी को आदेश दिया कि 'जब मैं प्रातःकाल अपनी पूजा आरम्भ करूं, तो इनको हमारे कमरे में लेकर आ जाना।' इसके बाद आदरणीय भाई जी ने उन्हें प्रणाम निवेदित किया और उन्होंने आदेश दिया – 'अब जाओ। अपने कमरे में होटल से लाकर अपना सामान रखो और आराम करो।'' आदरणीय भाई जी ने अपना सब सामान होटल से लाकर उस कमरे में रखा जो उनको रहने के लिए बतलाया गया था। उस कमरे में जब वे अपना सामान रख रहे थे, तभी ब्रह्मचारी श्री दयानन्द जी भी उस कमरे में पहुँच गये एवं बोले कि 'चलिये अच्छा हुआ, मैं भी इसी कमरे में रुका हुआ हूँ।'

दूसरे दिन प्रातःकाल साढ़े छह बजे एक साधक आया एवं कहा कि 'महाराज जी आपको अपने कमरे में बुला रहे हैं।' आदरणीय भाई जी अपने दैनिक नैतिक कार्यक्रम से निवृत्त हो चुके थे, अतः उस साधक के साथ चलकर आचार्य श्री निरंजन देव सरस्वती जी महाराज के कमरे में पहुँच गये। उस कमरे में विराजमान, आचार्य जी ने इन्हें बैठने का इशारा किया और ये कमरे में पड़े जमीन पर बिछे आसन पर बैठ गये। तदनन्तर आचार्य निरंजन देवजी महाराज ने अपनी पूजा एवं आरती का कार्य आरम्भ किया। सर्वप्रथम उन्होंने पवित्र तुलसीदल मिश्रित जल से आचमन व स्नान किया, उसके

बाद दिव्य सुगन्ध वाला चंदन तैयार किया एवं शरीर पर कई स्थानों पर लगाया, फिर पुष्प अर्पित करके, बहुत ही अच्छी सुगन्ध वाली अगरबत्ती जला कर पूजनीय स्वरूपों की जगह विराजमान ग्रंथों को दिखलाया। वे पूजा आरम्भ करने वाले समय से ही लगातार संस्कृत के श्लोकों का सस्वर पाठ करते हुए पूजा की तैयारी कर रहे थे। पूजा की तैयारी होते–होते उनके पूरे कमरे में दिव्य मनमोहक सुगंध का साम्राज्य छा गया। इसके बाद लगभग एक घण्टे तक परम पूज्य श्री निरंजन देव जी महाराज ने संस्कृत के श्लोकों द्वारा प्रार्थना किया एवं उसके बाद करीब एक घण्टे तक ध्यान की मुद्रा में बैठे रहे। उकसे बाद अल्पाहार आया और दोनों आदमी अल्पाहार ग्रहण किये। उसके बाद श्री निरंजन देव जी ने आदेश दिया कि 'इस समय थोड़ी देर का कार्यक्रम है, उसका आनन्द लेकर अपने कार्य पर चले जाना।' यह प्रचार कार्यक्रम पाँच दिनों का था एवं यह तीसरे दिन पहुँचे थे, अतः कार्यक्रम के अन्तिम दिन तक इस आध्यात्मिक कार्यक्रम का आनन्द लिये। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद सभी बाहर के आगन्तुक अपनी वापसी की यात्रा की अनुमति माँगने आते रहे एवं परम पूजनीय श्री निरंजन देव जी महाराज सबको आशीर्वाद एवं प्रसाद देकर विदा करते रहे। आदरणीय भाई जी ने उन्हें भेंट स्वरूप कुछ प्रदान किया एवं उन्होंने आशीर्वाद दिया एवं पूछा कि –'कहाँ जाना है?' भाई जी ने बतलाया कि –'हमें उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद में जाना है।' महाराज जी ने अपने एक शिष्य से कहा कि 'देखो! कोई सत्संगी कानपुर की तरफ तो नहीं जा रहा है।' कुछ देर बाद वह शिष्य आया एवं प्रार्थना किया कि 'सभी लोग चले गये और कानुपर की तरफ जाने वाला कोई नहीं है।' कुछ देर तक वह मौन रहे (जैसे कुछ विचार कर रहे हों) एवं फिर अपने एक शिष्य को आदेश दिया कि 'इन्हें हावड़ा स्टेशन पहुँचा दो।' यात्रा आरम्भ करते समय इन्हें आशीर्वाद दिया एवं कहा कि 'तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें अच्छी प्रकार योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने दिया है एवं मैं भी उस पर अपनी पूर्ण सहमति प्रदान करता हूँ। योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से बड़ी कोई भी आध्यात्मिक सत्ता नहीं है। यात्रा में तुम्हें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।' उसके बाद आचार्य श्री के शिष्यों ने इन्हें हावड़ा स्टेशन पहुँचा दिया।

हावड़ा स्टेशन पहुँच कर इन्होंने पता किया तो उस समय कानपुर की तरफ आने वाली कोई ट्रेन नहीं थी। स्टेशन पर एक आदमी से पूछने पर पता चला कि अब कल की डेट में ट्रेन मिलेगी। अतः ये प्रथम श्रेणी प्रतिक्षालय में जाकर अपना सामान रखें कि अब रात तो यहीं गुजारनी पड़ेगी। ये ज्यौंही आराम से बैठे उस प्रतीक्षालय के रखवाले की ड्यूटी बदल गयी एवं दूसरा व्यक्ति आ गया। उसने प्रतीक्षालय में प्रवेश करते ही प्रश्न किया कि 'आपको कहाँ जाना है?' आदरणीय भाई जी ने उत्तर दिया कि 'जाना तो हमें उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में है, काफी लम्बा सफर है परंतु एक आदमी ने बतलाया कि अब आज की डेट (तारीख) में कोई गाड़ी नहीं है, अतः मैं तो यहीं रात गुजारना चाहता हूँ।' उस प्रतीक्षालय की रखवाली करने वाला वह व्यक्ति जिसका नाम मिस्टर पीटर था कहा कि– 'अरे भाई! बिना प्रतीक्षालय के रजिस्टर में एन्ट्री किये मैं तुम्हें यहाँ नहीं रूका सकता और एंट्री करके ठहराऊं तो इस शहर के सबसे महंगे होटल से भी महंगा पड़ेगा। आप देखने में शरीफ मालूम पड़ते हैं अतः मैं आपकी सहायता अवश्य करूंगा।' प्लेटफार्म नम्बर एक पर सुपरफास्ट हावड़ा जम्मूतवी ट्रेन अभी लगकर खड़ी होगी। तुम टिकट मत कटाना। उस ट्रेन के स्लीपर कोच नम्बर पाँच में टी.टी. श्री

गुप्ताजी जा रहे हैं, उनसे कह देना कि मिस्टर पीटर ने भेजा है, वह तुम्हें बैठाकर निर्धारित स्थान पर पहुँचा देंगे।' अंग्रेजी वेशभूषा में मिस्टर पीटर को देखकर उन्हें मन ही मन हंसी आ रही थी एवं सोच रहे थे कि फटीचर सा दिखने वाला व्यक्ति कितना हांक रहा है (लम्बी चौड़ी बात कर रहा है।) उसकी अविश्वसनीय बातों पर यह विचार कर ही रहे थे कि उसने दोबारा कहा कि 'तुम्हारे पास सामान ज्यादा है, इसे लेकर प्लेटफार्म नम्बर एक पर चले जाओ।' दस पन्द्रह मिनट में हावड़ा जम्मूतवी सुपरफास्ट एक्सप्रेस प्लेटफार्म नम्बर एक पर लगने वाली है। इसी दरम्यान इन्हें आचार्य श्री निरंजन देवजी की बात याद आ गयी कि 'यात्रा में तुम्हें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए' एवं यह अपना सब सामान लेकर प्लेटफार्म नम्बर एक पर पहुँच गये। प्लेटफार्म पर पहुँचने के मात्र दो मिनट बाद ही हावड़ा जम्मूतवी सुपरफास्ट ट्रेन आकर प्लेटफार्म नम्बर एक पर खड़ी हो गयी। वे अपना सामान लेकर गये एवं पाँच नम्बर की स्लीपर बोगी में चढ़ने लगे। उस बोगी में टी.टी.आई. श्री गुप्ताजी मौजूद थे। उन्होंने पूछा कि– 'स्लीपर क्लास का टिकट है।' इन्होंने कहा कि 'टिकट तो हमारे पास नहीं है परंतु मिस्टर पीटर जी ने कहा है कि आप स्लीपर बोगी नम्बर पाँच में बैठ जाइयेगा एवं जब उस बोगी के इंचार्ज श्री गुप्ता जी आप से पूछे तो बतला दीजिएगा कि आपको मैंने (मिस्टर पीटर) भेजा है। पता नहीं मिस्टर पीटर एवं टी.टी. आई. श्री गुप्ता जी का क्या संबंध था। श्री आर.सी. ठाकुर जी द्वारा यह बताये जाने पर वह बड़ा प्रभावित हुआ एवं उसके बाद उसने इनके साथ विशिष्ट यात्री की तरह व्यवहार किया। तदनन्तर उसने कहा कि 'आप अमुक नम्बर की बर्थ पर जाकर बैठ जाइये।'

ट्रेन अपने निर्धारित समय पर चलना आरम्भ की। टी.टी. श्री गुप्ताजी ने उस बोगी को चेक कर लिया एवं उसके बाद आकर इनकी बगल में बैठ गये। श्री गुप्ता जी ने प्रश्न किया कि '–आप यहाँ किस जगह आये थे।' आदरणीय भाई जी ने बतलाया कि 'इस मुहल्ले में आध्यात्मिक प्रवचन एवं प्रचार कार्यक्रम था, मैं वहीं से आ रहा हूँ।' इन्होंने पूछा कि 'आप प्रसाद लेंगे?' श्री गुप्ताजी ने सकारात्मक स्वीकृति पर इन्होंने एक सेब और कुछ मिठाई उस प्रसाद में से दिया, जो निरंजन देव जी महाराज ने काफी मात्रा में इन्हें दिया था। उन्होंने प्रसाद को प्रणाम करके ग्रहण किया। सेब खाने के बाद उन्होंने कहा कि 'बड़ा ही बढ़िया और स्वाविष्ट सेब है।' तदनन्तर श्री गुप्ता जी ने आदरणीय भाई जी से पूछा कि 'आपके पास कोई टिकट है?' इन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। उसके बाद उसने कहा कि 'हावड़ा से कानपुर का किराया आपको ज्ञात है।' इन्होंने बतलाया कि इतने रुपये किराया है। उसने कहा कि 'आप उतने रुपये हमें दे दीजिए। भाई जी ने श्री गुप्ता जी को सौ रुपये का एक नोट दिया तो उन्होंने निर्धारित किराया काटकर शेष धनराशि इन्हें लौटा दी। तदनन्तर एक डुप्लीकेट बुकलेट पर कुछ दूरी पर दो पैरेलल समानान्तर लाइन खींचा एवं बीच में सांकेतिक भाषा में खाली स्थान पर कुछ लिखा एवं उसके ऊपर वाली प्रति इन्हें फाड़कर दे दिया। साथ ही कहा कि 'रेलवे का कोई भी कर्मचारी आपसे टिकट माँगे तो आप यही कागज दिखला दीजिएगा। यह ट्रेन कानपुर नहीं रुकेगी, लखनऊ या वाराणसी रुकेगी। जब तक यह कागज आपके पास इस यात्रा में रहेगा, आप कहीं भी यात्रा कर सकते हैं और आपको कहीं भी टिकट नहीं कटाना पड़ेगा।' ये सुपरफास्ट ट्रेन से वाराणसी उतरे, गंगा स्नान किये, बाबा विश्वनाथ का दर्शन लाभ लिये एवं फिर उस कागज के सहारे कानपुर पहुँच गये। विशेष बात यह रही कि ट्रेन यात्रा के दौरान जब किसी ने इनसे टिकट की माँग की एवं इन्होंने उसे श्री गुप्ताजी द्वारा

दिये कागज दिखलाये, सबने यही कहा, 'ठीक है सर आपको कोई तकलीफ तो नहीं है।' इस प्रकार इनकी सुखद यात्रा का अन्त हुआ। अब यह कृपा प्रसंग भी निम्न पंक्तियों के साथ यहीं विश्रामित है:-

हे मेरे सद्गुरु तुम्हारी महिमा न्यारी है।
हे परम योग योगेश्वर तेरी लीला न्यारी है।।
हे पुरुष विशेष पतंजलि के हम तेरी शरण में आये हैं।
हम तेरे अकिंचन बालक हैं, चरणों में शीश झुकाये हैं।।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।
गावो भतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी ।।

अर्थात् गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिए महान् मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन हैं।

गो-सेवा करिये और राष्ट्र को सुरक्षित एवं सम्पन्न बनाइये।

भ्रमर - जप

भ्रमर के गुञ्जारव की तरह गुनगुनाते हुए जो जप होता है वह भ्रमर–जप कहाता है। किसी को यह जप करते देखने–सुनने से इसका अभ्यास जल्दी हो जाता है। इसमें होंठ नहीं हिलते, जीभ हिलाने का भी कोई विशेष कारण नहीं। आँखें झपी रखनी पड़ती हैं। भ्रूमध्य की ओर यह गुञ्जारव होता हुआ अनुभूत होता है। यह जप बड़े ही महत्त्व का है। इसमें प्राण सूक्ष्म होता है और स्वाभाविक कुम्भक होने लगता है। प्राणगति धीरे–धीमी होती है, पूरक जल्दी होता है और रेचक धीरे–धीरे होने लगता है। पूरक करने पर गुञ्जारव आरम्भ होता है और अभ्यास से एक ही पूरक में अनेक बार मन्त्रावृत्ति हो जाती है। इसमें मन्त्रोच्चार नहीं करना पड़ता। वंशी के बजने के समान प्राणवायु की सहायता से ध्यानपूर्वक मन्त्रावृत्ति करनी होती है इस जप को करते हुए प्राण–वायु से ह्रस्व–दीर्घ कम्पन हुआ करते हैं और आधार–चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक उनका कार्य अल्पाधिक रूप से क्रमशः होने लगता है। ये सब चक्र इससे जाग उठते हैं शरीर पुलकित होता है। नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य में उत्तरोत्तर अधिकाधिक कार्य होने लगता है। सबसे अधिक परिणाम भ्रूमध्य भाग में होता है। वहाँ के चक्र के भेदन में इससे बड़ी सहायता मिलती है। मस्तिष्क में भारीपन नहीं रहता। उसकी सब शक्तियाँ जाग उठती हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्णता बहुत बढ़ती है। प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्ण बहुत बढ़ती है। तैजस परमाणु अधिक तेजस्वी होते हैं और साधक को आन्तरिक प्रकाश मिलता है। बुद्धि का बल बढ़ता है। मनोवृत्तियाँ मूर्छित हो जाती हैं। नागस्वर बजाने से साँप की जो हालत होती है वही इस गुञ्जारव से मनोवृत्तियों की होती है। उस नाद में मन स्वभाव से ही लीन हो जाता है और तब नादानुसन्धान का जो बड़ा काम है वह सुलभ हो जाता है। '*योगतारावली*' में भगवान् श्री शंकराचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीशंकर ने मनोलय के सवा लाख उपाय बताये, उनमें नादानुसंधान को सबसे श्रेष्ठ बताया। उस अनाहत संगीत को श्रवण करने का प्रयत्न करने के पूर्व भ्रमर–जप सध जाय तो आगे का मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। चित्त को तुरन्त एकाग्र करने का इससे श्रेष्ठ उपाय और कोई नहीं है। इस जप से साधक को आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह स्वपरहित साधन कर सकता है। यह जप प्रपंच और परमार्थ दोनों में काम देता है। शान्त समय में यह जप करना चाहिए। इस जप से यौगिक तन्द्रा बढ़ती जाती है और फिर उससे योगनिद्रा आती है। इस जप के सिद्ध होने से आन्तरिक तेज बहुत बढ़ जाता है और दिव्य–दर्शन होने लगते हैं, दिव्य जगत् प्रत्यक्ष होने लगता है, इष्टदर्शन होते हैं, दृष्टान्त होते हैं और तप का तेज प्राप्त होता है। कविकुलतिलक कालिदास ने जो कहा है–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु, गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

बहुत ही ठीक है– 'शमप्रधान तपस्वियों में (शत्रुओं को) जलाने वाला तेज छिपा हुआ रहता है।'

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17 JUNE 2016

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग मिथ्रावली का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

□□□□□□

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष है; आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अत: उसे भेजकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

संस्थापक – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दयालाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दयालाल शर्मा

PRINTPOINT, AGRA-9897566803